CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.2

सुख की एक झलक

१२ वां भाग

सिद्धान्ताचार्य पं. ... चन्द्र जी शास्त्री
आचार्य, श्री ... महाविद्यालय, ...
द्वारा भेंट

श्री क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी

के

मधुर प्रवचनों का संकलन

संकलयिता—

कपूरचन्द वरैया,

एम. ए., साहित्यरत्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या.....................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम सुख की एक झलक

लेखक क्षु० गणेश प्रसाद जी वर्णी

लेनेवाले का नाम	देनेकी तिथि	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ ॐ ॥

श्री महावीराय नमः

सुख की एक झलक

[१२ वाँ भाग]

आध्यात्मिक संत प्रशान्तमूर्ति न्यायाचार्य
श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी
महाराज के 'ईसरी' (पारसनाथ) में षष्ठम्
चातुर्मास के अवसर पर दिये गये
मधुर प्रवचनों का
संकलन

संकलयिता–
कपूरचन्द वरैया, एम. ए., साहित्यरत्न
लश्कर (ग्वालियर) म. प्र.

वीर नि० सं० २४८६ } { सम्वत् २०१६ वि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक—
कपूरचन्द वरैया
कसेराश्रोली, लश्कर (ग्वालियर)

मूल्य १।।)

मुद्रक—
अशोक प्रेस, लश्कर.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान और क्रिया की परस्पर मैत्री

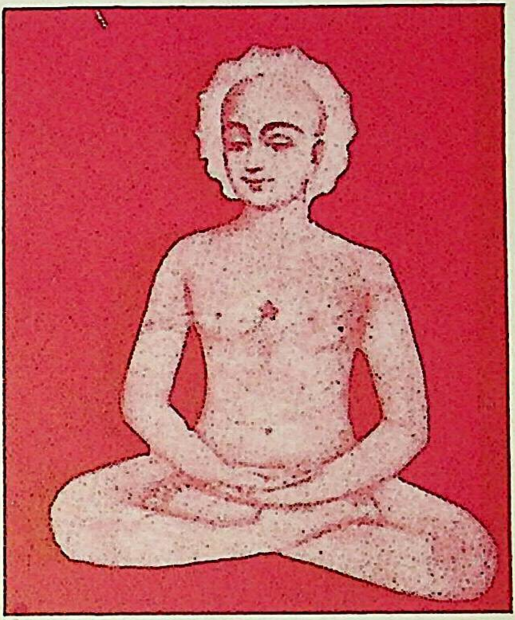

समुझे न ज्ञान कहे करम किये सों मोक्ष,
ऐसे जीव विकल मिथ्यात की गहल में ।
ज्ञान पक्ष गहे कहे आतमा अबंध सदा,
वरते सुछंद तेउ डूबे हैं चहल में ।।
जथा योग्य करम करे पै ममता न धरे,
रहे सावधान ज्ञान-ध्यान की टहल में ।
तेई भवसागर के उपर ह्वै तरे जीव,
जिन्ह को निवास स्यादवाद के महल में ।।

—पंडितप्रवर बनारसीदास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानवता की पुकार

आज का युग भौतिकवाद का प्रधान युग है। भौतिकवाद में जड़-तत्त्वों की प्रधानता होकर चेतनतत्त्व की उपेक्षा कर दी जाती है। इसका जो परिणाम होता है, वह किसी व्यक्ति से छिपा नहीं है। विज्ञान की चकाचौंध में अंधा हुआ मानव आज जीवन की सुख-शान्ति से भी हाथ धो बैठा है।

क्या समाज में, क्या नगर में, क्या प्रान्त में, क्या राष्ट्र में और क्या विश्व में— आप एक नज़र डालें तो पता चलेगा कि चारों ओर एक अशान्ति का जाल-सा बिछा हुआ है। परमाणु तथा उद्जन बम का आविष्कार करके एक राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र के विनाश के लिए घातक साधन जुटा दिए हैं। पता नहीं, कब युद्ध के भयावह बादल आकाश में मँडराने लगें? राष्ट्र ही क्यों, मानव की बढ़ती हुई इस तृष्णा ने समूचे मानव-समाज के प्रति घोर अविश्वास का ऐसा प्रश्नसूचक चिन्ह लगा दिया है जिसके फलस्वरूप सबके सामने आज अपनी रक्षा का सवाल सर्वोपरि हो गया है।

आप विश्वास करें या न करें, यदि इस रोग का समय पर उचित निदान नहीं हुआ तो वह दिन दूर नहीं जब मानवता खतरे में पड़ जायेगी। इसलिए आइये, हम सबको पुस्तक के पृष्ठों का अवलोकन करके अपने जीवन का पुनर्निरीक्षण करना चाहिये और देखना चाहिये कि ऐसी वह कौनसी भूल है जिसके कारण आज मानव-समाज वास्तविक सुख-शान्ति से कोसों दूर हो गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में पूज्य वर्णीजी के 'ईसरी' में छठे चातुर्मास के अवसर पर दिये गए प्रवचनों का संग्रह हुआ है। इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'समयसार' के पुनः उन गम्भीर तत्त्वों का प्रतिपादन है जिनका समझना, मनन करना मुमुक्षुओं को आवश्यक ही नहीं किन्तु अनिवार्य है।

पू० वर्णीजी में बोलने की शक्ति अब निरन्तर क्षीण होती जा रही है, इसमें सन्देह नहीं, फिर भी वह शक्ति को सँभालते हुए जितना भी बोलते हैं उसमें कुछ न कुछ गम्भीर तत्त्व छिपा ही रहता है। आजकल वह एक निरीह 'जैनसन्त' के नाम से प्रसिद्ध हैं किन्तु मुझे तो उनकी अमर-वाणी मानव-मात्र को कल्याण का पथ प्रदर्शित करती हुई प्रतीत होती है। इसलिए ऐसे आध्यात्मिक सन्त को किसी देश विशेष, जाति विशेष अथवा संप्रदाय विशेष के दायरे में बद्ध करना कम से कम मैं तो उचित नहीं समझता हूँ।

आज समस्त संसार जहाँ भौतिकता की चादर ओढ़े हुए मोह की खुर्राटें ले रहा है, वहाँ वर्णीजी 'अध्यात्म' की किरणें विखेरते हुए मानव-मात्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

'ऐ मानवो ! शान्ति का मार्ग आकुलता के अभाव में है, वह निज में है। जिस व्यक्ति की आत्मा में संशय और भय है वह कभी अपने आपको उन्नत नहीं बना सकता, अतः निशङ्क और निर्भय बनो।

धर्म सांसारिक सुख देने के लिए नहीं है, और न उससे इन छोटी वस्तुओं की कामना करना चाहिये। वह तो मोक्षसुख देनेवाली शक्ति है परन्तु वह प्राप्त तभी होगी जबकि व्यक्ति निष्काम रहे।

जैसा काल बदलता है, वैसी ही संसार की समस्त वस्तुएँ बदलती रहती हैं। यह कोई बात नहीं कि जो आज बुरा है वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल अच्छा न हो, और जो आज अच्छा है वह कल बुरा न हो। इसलिए संसार के किसी भी पदार्थ से राग और द्वेष नहीं करना चाहिये। संसार के समस्त चराचर पदार्थों में हेयोपादेय का ज्ञान रखते हुए समभाव ही रखना चाहिये।

संसार एक अगाध समुद्र है तो श्रद्धा एक नौका भी तो है। परन्तु स्मरण रहे कि सत्ज्ञान और सदाचार अर्थात्, विवेक एवं विशुद्धता के दो पतवार उसके लिए अवश्य आवश्यक हैं।

सद्गुण देखना है तो दूसरों में देखो, दोष देखना है तो अपने में देखो। अपनी प्रशंसा और पराई निन्दा दोनों अपने आपको ले गिरनेवाले कुवाँ और खाई हैं।

कुमार्ग पर जानेवाले प्राणियों को सुमार्ग पर लगाना परम पुण्य है। समय के अनुसार उसे हित-मित प्रिय वचनों से समझाकर, आवश्यक सेवा कर और द्रव्य की उचित सहायता देकर उसका स्थितीकरण करो, यही समीचीन धर्म है।

संसार के समस्त प्राणीमात्र के प्रति दया और मित्रता का व्यवहार रखो। दया और मित्रता यह दोनों गुण सुखी जीवन के खजाने की अक्षम पूँजी है।

सूर्य और चन्द्र से कुछ सीखना है तो एक बात सीखो कि तुम्हारा व्यवहार इतनी प्रसन्नता का हो कि तुम्हें देखते ही दूसरों के हृदय-कमल प्रफुल्लित हो उठें, कषाय से आतप्त हों तो भी शान्त हो जावें।

राजा-रंक, धनी-गरीब, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु, ब्राह्मण या भंगी कोई भी क्यों न हो, पेड़ अपनी छाया में सभी को बैठने देते हैं, फूल अपनी सुगन्धि सभी को देते हैं, सूर्य अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाश और चन्द्र अपनी चाँदनी सभी को देते हैं तब तुम्हें भी आवश्यक है कि अपने धर्म को सभी को दो। बिना किसी वर्गभेद के, बिना किसो वर्णभेद के, और बिना किसीजातिभेद के यदि तुमने यह काम कर लिया तो समझो कि तुमने अपने धर्म का सच्चा स्वरूप समझ लिया है।

ज्ञान का सञ्चय करो परन्तु वह सच्चा ज्ञान होना चाहिये। यदि वह ज्ञान सच्चा (श्रद्धा सहित) नहीं है तो न होने के बराबर ही है। इसलिए यदि विश्व के पदार्थों का ज्ञान न ह सके तो कम से कम आत्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न तो करना ही चाहिये।

चींटी हो या हाथी, हिरण हो या सिंह, छोटे-बड़े, सबल-निर्बल सभी प्राणियों में आत्मा एक बराबर है। दुख की कारण-सामग्री मिलने पर सभी को दुख होता है अतः कभी किसी को न सताओ, न प्राण हरण करो। ऐसा करना हिंसा है, हिंसा सबसे बड़ा पाप है।

सदा सत्य बोलो। हितमित प्रिय और सत्य वचन बोलने से ही मनुष्य का सन्तरण हो सकता है।

हिंसा जैसा ही पाप चोरी करने का लगता है। यह एक निन्द्य कृत्य है। जहाँ आवश्यकतायें बढ़ती हैं वहीं चोरी की भावना होती है। जो न्यायपूर्वक अर्जन करो उसे ही सन्तोष-पूर्वक व्यय करो।

ब्रह्मचर्य एक रत्न है, मानव जीवन एक खजाना है। रत्न को खो दिया तो खजाना किस काम का? खजाना खाली होने पर फिर भर सकते हैं परन्तु इस खजाने को भरना असम्भव है। धार्मिक, शारीरिक और आर्थिक उन्नति का एक केन्द्र है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो वह है ब्रह्मचर्य। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करो। न कर सको तो पर-स्त्री का त्याग और स्वदार सन्तोष व्रत की प्रतिज्ञा करो। पर्व के दिनों में स्वस्त्री के साथ भी ब्रह्मचर्य रखो। स्मरण रहे, कुलटाऐं और वेश्याऐं जीवन का जीवित अभिशाप हैं।

संसार की कोई भी वस्तु तुम्हारी नहीं। इसलिये उनसे स्नेह छोड़ो, ममत्त्व छोड़ो, त्याग करने का प्रयत्न करो। आवश्यकता से अधिक परिग्रह रखना दूसरों का हिस्सा छीनना है, उन्हें दुःखी करना है।

क्षमा, विनय, सरलता, सन्तोष, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दस मोक्ष-महल की सीढ़ियाँ जितनी कुशलता से चढ़ोगे उतने ही ऊपर पहुँचोगे।

सद्देव की भक्ति, सत्शास्त्र का अध्ययन और सद्गुरू की सेवा ये उन्नति के तीन मार्ग हैं।'

प्रस्तुत पुस्तक भटकते हुये मानवों को सही मार्ग का निर्देश करने में प्रकाश-स्तम्भ का काम देगी। आशा है, प्रेमी पाठक इस भाग को भी उसी सहृदयता से अपनायेंगे जिस तरह उन्होंने पिछले भागों को अपनाकर मुझे इस कार्य में प्रोत्साहित किया है।

धन्यवाद !

एक विद्यार्थी,
कपूरचन्द वरैया
कसेराओली, लशकर (ग्वालियर)

शरद पूर्णिमा
वी. नि. सं—२४८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक

मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी

इस संसार में अनादिकाल से भ्रमण करते हुऐ अनेकों पर्याय पाईं किन्तु कहीं भी क्षण भर सुख प्राप्त न हुआ, यद्यपि निरंतर सुख की वाँछा रही और दुःख से डरता रहा। क्या कभी यह विचार किया कि ऐसा क्यों हो रहा है ? यदि एक वार भी यथार्थ विचार करता तो कभी का दुःखों से मुक्त होगया होता। इन दुखों का मूल कारण यह है कि आज तक दुख का स्वरूप व कारण, सुख का स्वरूप व कारण तथा निज को निज व पर को पर नहीं समझ पाया।

सर्व प्रथम तो इन बातों को समझने की बुद्धि पाना ही कठिन है, क्योंकि अनादिकाल से नित्य निगोद में पड़ा रहा। कभी ऐसा हुआ कि कर्मों का मंद अनुभाग उदय में आया और वह ही समय आयु बंध का हुआ, जिससे निगोद की आयु न बँध कर अन्य आयु बँध गई और यह नित्य-निगोद से निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति में उत्पन्न हुआ। यहाँ से द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय का पाना उत्तरोत्तर दुर्लभ रहा। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय तक भी इतने ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप ग्रहण कर सके।

कभी संज्ञी पंचेन्द्रिय भी हुआ तो तिर्यंच पर्याय में निरंतर उदरपूर्ति की चिंता में भयभीत रहा, इधर से उधर मारा मारा फिरा, एक क्षण के लिये भी उस चिंता से मुक्त हो अन्य विचार का अवसर नहीं मिला। संक्लेश भाव से मरण कर नरक में गया, वहाँ पर निरंतर परस्पर की मार-काट में आयु पूर्ण की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि मारकाट से छुटकारा मिलता तो अन्य कुछ विचार करता। तिर्यंच पर्याय में यदि कभी मरण समय मंद कषाय हुई तो देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर भोग-सामग्री इतनी अधिक है कि उनको भोगने से ही फुर्सत नहीं। इसके अतिरिक्त दूसरों की सम्पदा को देखकर निरंतर वहाँ झूरना रहता है। मरण से छह मास पूर्व माला मुरझा जाती है। वह विचार करता है कि अब यह सप्त धातुरहित दिव्य-शरीर व भोग-सामग्री छूट जावेगी और मुझको गर्भ धारण कर माता के उदर में रहना पड़ेगा, जहाँ पर मल-मूत्र भरा हुआ है जिसमें निरंतर दुर्गन्ध आती है, माता का उगाल भोजन होगा और सप्त कुधातुमयी औदारिक शरीर मिलेगा। इस प्रकार के विचारों से उसके अति-संक्लेश परिणाम होते हैं। उस समय प्रकृति कहती है कि घबरा मत, तुझको ऐसी पर्याय मिलेगी कि जहाँ पर गर्भ-धारण नहीं करना पड़ेगा और न सप्त कुधातुमयी शरीर मिलेगा। जिसका परिणाम यह होता है कि वह एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हो जाता है, जहाँ पर न तो गर्भ धारण करना पड़ता है और न सप्त धातुमयी शरीर ही मिलता है। इस प्रकार अनन्त काल तक तिर्यंच, नरक व देव पर्याय में भ्रमण करता हुआ पर्यायों की पूर्णता करता रहता है।

मार्ग में जाते हुए एक मनुष्य का चौराहे में रत्न गिर पड़ा, घर पर जाकर जब उसने अपनी जेब देखी तो रत्न उसकी जेब में नहीं था। पुनः वह उसी मार्ग से अपने रत्न को खोजता हुआ जाता है। जिस प्रकार उस चौराहे पर पुनः रत्न का मिलना कठिन है उसी प्रकार इस मनुष्य भव का मिलना दुर्लभ है। यदि मनुष्य हो भी गया तो म्लेच्छ खंड में उत्पन्न होगया, जहाँ पाप कार्यों की बहुलता है। यदि आर्यक्षेत्र में भी मनुष्य हुआ तो नीचकुल में उत्पन्न हुआ जहाँ पर भी निरंतर पापमयी परिणाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृ । कभी उत्तम कुल के मनुष्यों में भी जन्म लिया तो अल्प आयु पाई जिसके कारण या तो गर्भमें से ही चय गया या बचपन में ही मरण को प्राप्त हुआ। यदि अधिक आयु भी पाई तो धनहीन होने से निरंतर आजीविका की चिन्ता में इधर से उधर मारा-मारा फिरा। धनी घराने में भी जन्म लिया तो निरंतर बीमारी के कारण दुःखी रहा। एक मील का स्वामी बीमारी के कारण वहुत दुःखी था। एक दिन वह कोठी के वाहर निकला। मजदूरों को भोजन करते हुए देखकर उसने ठंडी साँस भरी और कहा– 'यदि मैं भी मज़दूर होता तो भरपेट रोटी खाने को तो मिल जाती।' कभी निरोग शरीर भी मिल गया तो बुद्धि, शान्त स्वभाव, सत्संगति, यथार्थ धर्मोपदेश और सम्यत्तव का पाना उत्तरोत्तर दुर्लभ रहा। इस प्रकार सम्यग्दर्शन जो आत्मीक सुखरूप मोक्ष-महल की प्रथम सीढ़ी है, वह इस जीव के लिए अब तक अप्राप्य रही।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप–

वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसामयी धर्म तथा अनेकांत के निरूपण करनेवाले शास्त्र के यथार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का अथवा इन सात व पुण्य और पाप ऐसे नौ पदार्थों के विपरीताभिनिवेश रहित सत्यार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। स्व और पर के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। स्व अर्थात् निज आत्म-स्वरूप के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

इस प्रकार एक ही सम्यग्दर्शन के ये चार लक्षण कहे गये हैं। स्थूल दृष्टि से विचार करने पर यद्यपि इनमें भिन्नता पाई जाती है तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इन चारों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षणों का एक यही प्रयोजन है कि निज स्वभाव का यथार्थ श्रद्धान करके पर द्रव्यों से तथा पर द्रव्यों के निमित्त से होने-वाले औपाधिक भावों से, अपने को भिन्न पहिचाने और अपने को पर रूप से तथा पर को निज रूप से ग्रहण न करे।

देखने-जाननेवाला अर्थात् ज्ञान-दर्शनमयी जीव तत्त्व है सो तो मैं हूँ, इस प्रकार जीव तत्त्व का श्रद्धान होय है। अचेतन जड़ स्वरूप शरीरादिक तथा इन्द्रियों के विषय और पुद्गलकर्म के निमित्त से होनेवाले रागादि भाव ये सब अजीव तत्त्व हैं, जो मुझ जीवतत्त्व से भिन्न हैं। इसप्रकार अजीवतत्त्व का श्रद्धान होय है। शरीर नाम-कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ योग, जो कर्म होने योग्य पुद्गल वर्गणाओं के आने का कारण है, वह हेय है, मेरा स्वभाव नहीं है। मोहनीय-कर्म के उदय से उत्पन्न हुए मिथ्यात्व व कषाय भाव, जो आत्मा के साथ द्रव्य-कर्म के बन्धन में मूल कारण हैं, औपाधिक भाव है, मेरे स्वभाव भाव नहीं हैं— अतः ये त्यागने योग्य हैं। वीतराग विज्ञान भाव, जो संवर व निर्जरा के कारण हैं, मेरे निज भाव हैं अतः उपादेय हैं। पूर्ण वीतराग विज्ञानता, पूर्ण सुखरूप मोक्ष अवस्था होने के कारण अत्यन्त उपादेय है। इस प्रकार इन सात तत्त्वों के श्रद्धान में स्व-पर के भेद का श्रद्धान ही तो हुआ, अथवा पर से भिन्न मात्र स्व का ही श्रद्धान हुआ।

अरिहंत देव का श्रद्धान—

वीतराग अरिहंत देव के स्वरूप का जो श्रद्धान है वह ही निज के स्वरूप का श्रद्धान है, क्योंकि जो अरिहंत का स्वरूप है वह ही मेरा स्वभाव है। अरिहंत भगवान भी जीव तत्त्व हैं और मैं भी जीव तत्त्व हूँ, केवल अन्तर इतना है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक. वह स्वभाव उनकी अवस्था में व्यक्त होगया है और मुझमें वह अभी व्यक्त नहीं हुआ है।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्सलयं ॥८०॥

(प्रवचनसार)

जो पुरुष द्रव्य गुण पर्यायों से वीतराग अर्हंत देव को जानता है वह अपने स्वरूप को जानता है। निश्चय करि जैसा अर्हंत का स्वरूप है, वैसा ही आत्मा का शुद्ध स्वरूप है और उसका दर्शनमोह अवश्य नाश को प्राप्त हो जाता है। प्रतिदिन हम देव दर्शन के लिए जिन मन्दिर में जाते हैं, इसीलिए तो जाते हैं कि हमको देव के स्वरूप के स्मरण से निजात्मा के शुद्ध स्वरूप का बोध हो जावे और सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जावे। जिन विम्ब के दर्शन से निधत्ति और निकाचित्तरूप भी मिथ्यात्व कर्म-कलाप का क्षय देखा जाता है।

'जिन बिंब दंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादि कम्मकलावस्स खयदंसणादो।"[1]

जिन विम्ब के दर्शन व पूजन में कौनसी कषाय व इँद्रिय के विषय का पोषण होता है? अर्थात् किसी भी कषाय व इँद्रिय-विषय का पोषण नहीं होता, क्योंकि वीतराग देव के दर्शन व पूजन से वीतरागता ही आती है, राग-द्वेष की वृद्धि नहीं हो सकती। फिर वीतराग देव का दर्शन व पूजन बंध का कारण कैसे हो सकता है? यद्यपि दर्शन व पूजन शुभ भाव हैं, शुद्ध भाव नहीं हैं तथापि ये शुभ भाव वीतरागमयी होने से संवर व

---

[1] धवल पु० ६ पृ० ४२७-४२८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्जरा के कारण हैं। यदि ऐसे शुभ भावों को मात्र वंध का कारण माना जावे, संवर व निर्जरा का कारण न माना जावे तो जीव को कभी मोक्ष नहीं होगा। 'कल्याण-मन्दिर' स्तोत्र में कहा है—

हे भगवन् ! मैंने आपका नाम सुना, दर्शन किया, समवसरण भी गया किन्तु भक्तिपूर्वक आपको हृदय में धारण न किया। यदि एक बार भी भावपूर्वक दर्शन कर लेता तो संसार में नहीं रूलता। भावशून्य क्रिया होने के कारण मैं वास्तविक फल को प्राप्त नहीं कर पाया।

सम्यक्त्वोत्पत्ति के समय जीव के शुद्ध भाव तो होते नहीं, क्योंकि शुद्ध भाव तो शुक्ल ध्यान के समय होते हैं, मात्र शुभ भाव होते हैं जिनके द्वारा मिथ्यात्वादि कर्मों की स्थिति व अनुभाग का घात होता है। यदि इन शुभ भावों से मिथ्यात्वादि कर्मों की संवर व निर्जरा न हो तो जीव को सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता और सम्यग्दर्शन के विना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है।

अशुभ, शुभ और शुद्ध इन तीन भावों में से एक जीव के एक समय में कोई सा एक भाव होगा, क्योंकि एक समय में दो भावरूप दो पर्यायें एक जीव द्रव्य की नहीं हो सकती। जिस समय जीव के जो भाव होगा उस समय वह जीव उस भाव से तन्मय होगा।

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो ॥[2]
जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो ॥[3]

---

[2] प्रवचनसार गाथा ८। [3] प्रवचनसार गाथा ९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक. जिस समय जिस भाव से द्रव्य परिणमन करता है उस समय उस भावमय द्रव्य हो जाता है, जैसे लोहे का गोला जब आग में डाला जाता है तब उष्णरूप होकर उष्णपने से तन्मय हो जाता है। इसी तरह यह आत्मा जब शुभ, अशुभ या शुद्ध भावों में से जिस भावरूप परिणमता है उस भाव से उसी रूप हो जाता है। अतः जीव के शुभ भाव के काल में अशुभ या शुद्ध भाव नहीं हो सकते। सम्यक्त्वोत्पत्ति के समय अथवा चतुर्थादि गुणस्थानों में जो शुभ भाव होते हैं वे संवर और निर्जरा के कारण हैं। **"सुह सुद्ध परिणामेंहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो।"**[४] शुभ व शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मोंका क्षय हो ही नहीं सकता। इस प्रकार वीतराग अरहंत देव के श्रद्धान से निज आत्मा के शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान होता है। वीतरागदेव का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के इस लक्षण में भी निज आत्मा के शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान गर्भित है।

निर्ग्रंथ गुरू का श्रद्धान–

निर्ग्रंथ गुरु का श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन, ऐसा जो कहा गया है इसमें भी निज आत्मा के शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान गर्भित है। ग्रंथ अर्थात् परिग्रह दो प्रकार का है १. अंतरंग परिग्रह, २. वहिरंग परिग्रह। मोहनीय कर्म के निमित्त से उत्पन्न होनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद और मिथ्यात्व रूप अंतरंग भाव तो अंतरंग परिग्रह है। मोहनीय कर्म के उदय के कारणभूत अथवा क्रोधादि कषाय के आश्रयभूत ऐसे वाह्य

---

४ जयधवल पु० १ पृ० ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य क्षेत्र आदि वहिरंग परिग्रह हैं। वह दस प्रकार का― १. खेत, २. मकान, ३. चांदी, ४. सोना, ५. गाय भैंस आदि धन ६. गेहूँ चना आदि धान्य, ७. दासी, ८. दास, ९. वस्त्र, १०. वर्तन। अन्तरंग और वहिरंग इन दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग गुरु के होता है। ऐसे गुरु के दर्शन से निज आत्मा के शुद्ध स्वभाव का बोध अथवा श्रद्धान होता है, क्योंकि, उनके दर्शन से यह ज्ञात होता है कि क्रोधादि भाव मेरा स्वभाव नहीं है, हेय है त्याज्य है, और वीतरागता मेरा स्वभाव है, उपादेय है।

कैसे हैं वे गुरु, वचन बोले विना ही मात्र अपने शरीर की आकृति से मूर्तिमान् मोक्षमार्ग का निरुपण करनेवाले, युक्ति तथा आगम में कुशल, दूसरे जीवों के हित का मुख्यरूप से प्रतिपादन करनेवाले और लाभ-अलाभ, निन्दा व प्रशंसा में समता भाव रखनेवाले, ऐसे गुरु के स्वरूप के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन होय है।

आगम का श्रद्धान–

वीतराग सर्वज्ञ देव प्रणीत तथा स्याद्वाद से मुद्रित ऐसे आगम के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन होय है। ऐसे आगम में ही निज आत्मा के शुद्ध स्वरूप का यथार्थ कथन होता है और उसके श्रद्धान से निज आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान व श्रद्धान होने से सम्यग्दर्शन पुष्ट होता है–

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहि बुज्झदो णियमो।
खीयदि मोहो वचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥[1]

---

[1] प्रवचनसार अ० १ गा० ८६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक., वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगम से पदार्थों को प्रत्यक्ष व परोक्षतया जाननेवाले पुरूष के नियम से मोह का समूह अर्थात् विपरीत ज्ञान व श्रद्धान नाश को प्राप्त होता है इसलिए जिन आगम को अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिये। जिन आगम के बल से उनके आत्म-ज्ञान शक्तिरूप संपदा प्रगट होती है। सर्व वस्तुओं के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है जिससे दर्शनमोह का नाश होकर सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो जाती है।

जिस आगम के मूलकर्त्ता श्री वीतराग सर्वज्ञ श्री तीर्थंकर देव हैं और उनके वाद उत्तरकर्त्ता गणधर देव हैं और उनके अनन्तर उत्तरोत्तर कर्त्ता आचार्य महाराज हैं जिनको गुरु परम्परा से उपदेश प्राप्त हुआ है, वह आगम सर्वज्ञ के कथन का अनुवाद करनेवाला होने से प्रमाणीक है और उसकी श्रद्धा से सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है।

जिन शास्त्रों में एकान्त का पोषण है वे शास्त्र नहीं, शस्त्र हैं, उनके द्वारा विपरीत श्रद्धान हो जाने से जीव का अहित होता है। "प्रत्येक द्रव्य सर्वथा स्वतंत्र है, इसकी जो पर्यायें व्यक्त होती हैं, उनमें वह द्रव्य स्वयं ही कारण है, अन्य कोई द्रव्य उस पर्याय के प्रगट होने में किसी अपेक्षा से भी सहकारी कारण नहीं है।" ऐसे एकान्त का कथन करनेवाले आजकल बहुत शास्त्र रचे जाने लगे हैं। भोलेजीव उनको जिनागम जान करके विपरीत श्रद्धानी हो जाते हैं। यद्यपि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुणों की अपेक्षा स्वतंत्र हैं, क्योंकि गुण भी द्रव्य के समान अनाद्यनन्त होने से नवीन उत्पन्न नहीं होते अतः उनको किसी अन्य द्रव्य की सहकारिता की आवश्यकता नहीं होती; तथापि पर्याय की अपेक्षा द्रव्य स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पर्याय अपने अंतरंग व वहिरंग कारणों के अनुसार नवीन उत्पन्न होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरंग कारण तो द्रव्य है जो उस पर्यायरूप परिणमन करता है और वहिरंग कारण वाह्य द्रव्य क्षेत्र काल आदि है जो स्वयं तो उस पर्यायरूप परिणमन नहीं करते किन्तु उनकी सहकारिता के विना वह पर्याय प्रगट नहीं हो सकती। विवक्षित पर्याय के वाधक कारणों का अभाव भी वहिरंग कारण है, क्योंकि, बाधक कारणों के अभाव के बिना भी वह पर्याय व्यक्त नहीं हो सकती। अत्यन्त अभावरूप पदार्थ जैसे गधे के सींग आदि, जिनका कभी सद्भाव न था, न है और न होगा; वे कारण नहीं हो सकते और जिनका सद्भाव पाइये है परन्तु विवक्षित पर्याय के विरोधी अथवा घातक हैं ऐसे वाधक कारणों का अभाव भी विवक्षित पर्याय के व्यक्त होने में कारण होता है।

स्याद्वाद समस्त वस्तुओं के स्वरूप को सिद्ध करनेवाला, अर्हंत सर्वज्ञ का अस्खलित शासन है। वह स्याद्वाद इस प्रकार उपदेश करता है कि सब अनेकान्तात्मक हैं, क्योंकि समस्त वस्तु अनेकान्त स्वभाववाली हैं। जो वस्तु तत् है वही अतत् है, जो एक है वही अनेक है, जो सत् है वही असत् है, जो नित्य है वही अनित्य है– इस प्रकार एक वस्तु में वस्तुत्त्व की उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना 'अनेकान्त' है। यद्यपि सिद्ध भगवान द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म से मुक्त हैं तथापि ज्ञान-दर्शन आदि स्वभाव से अमुक्त हैं अत: सिद्ध भगवान मुक्तामुक्तात्मक हैं, न सर्वथा मुक्त हैं और न सर्वथा अमुक्त हैं। आत्मा भी चेतन अचेतनात्मक है। अर्थात् किसी अपेक्षा से आत्मा चेतन है और किसी अपेक्षा से अचेतन है अथवा चेतन (ज्ञान-दर्शन) गुण की अपेक्षा से आत्मा चेतन है और ज्ञेयत्वादि अन्य गुणों की अपेक्षा अचेतन है, न सर्वथा चेतन है और न सर्वथा अचेतन है। इसी प्रकार भवितव्यता की अपेक्षा पर्याय नियत है;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकिन्तु कार्यकारण की अपेक्षा पर्याय अनियत है, क्योंकि कारण के क्रम अक्रम के अनुसार कार्य का क्रम अक्रम है[1] अथवा कारण के व्यापार के आश्रय कार्य होय है[2]। पर्याय न सर्वथा नियत है और न सर्वथा अनियत है। "यद् भवति तद् भवति, यथा भवति तथा भवति, येन भवति तेन भवति, यदा भवति तदा भवति, यस्य भवति तस्य भवति।"[3] इस प्रकार का एकान्त नियतिवाद तो मिथ्यात्व है। अनेकान्त का निरूपण करनेवाला यथार्थ आगम का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

जिनेन्द्र-भक्ति का श्रद्धान--

अहिंसामयी धर्म का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं। आत्मा भी वस्तु है। आत्मा का स्वभाव अहिंसा है। जिन भावों से जीव के ज्ञान दर्शन आदि गुणों का घात होता है वे भाव हिंसा हैं। रागादि भावों से जीव के गुणों का घात होता है अतः रागादि भाव हिंसा है। रागादि भावों का अभाव अर्थात् मोह क्षोभ विहीन आत्म-परिणाम अहिंसा है।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥
(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

रागादि के अभावरूप मोह क्षोभ विहीन आत्म परिणाम ही अहिंसामयी धर्म है, उसका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। इस प्रकार अहिंसामयी धर्म के श्रद्धान से निज आत्म-स्वभाव के

---

[1] कारण क्रमाक्रमानुविधायित्वात्कार्यं क्रमाक्रमस्य।

[2] परीक्षामुख २–५८। [3] प्राकृत पञ्च संग्रह पृ० ५४७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा गया है। जिनदेव की पूजन व पात्र दान आदि कार्य, मोह क्षोभ विहीन आत्म-परिणाम के कारण होने से, धर्म हैं। जिनदेव पूजन व पात्र दान आदि कार्यों में जितने अंशों में राग है उतने अंशों में बंध है तथापि मुख्यपने मोह क्षोभ विहीन आत्म परिणाम के कारण होने से जिनदेव पूजन व पात्रदान आदि धर्म हैं। जैसे धन का अर्थी एक पुरुष व्यापार करता है। उस व्यापार के लिये दुकान का भाड़ा, नौकर का वेतन, बिजली, और दुकान सजावट आदि में पाँच हजार प्रति वर्ष व्यय कर देता है किन्तु व्य.पार से बीस हजार प्रति वर्ष की आय होती है तो क्या वह व्यापार आय का साधन है या व्यय का साधन ? बुद्धिमान तो उसको आय का ही साधन कहेगा। इसी प्रकार जिन पूजन व पात्रदान आदि में राग अंश वहुत कम है किन्तु निर्जरा प्रति समय उससे असंख्यात असंख्यात गुणी है। **"भत्तिए जिणवराणं खीयदि जं पुव्वसंचियं कम्मं"**[४] जिनेन्द्र भक्ति की महान् महिमा है जो पूर्व संचित कर्मों का नाश करता है। **"अरहंतणमोक्कारो संपहियबंधादो असंखेज्जगुणकम्मक्खयकारओ।"**[५] अरहंत नमस्कार से तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है—

अरहंतणमोकारं भावेण य जो करेदि पयडमदि।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण ॥

जो विवेकी पुरुष भावपूर्वक अरहंत को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है अर्थात् अति शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वर्तमान काल में इस क्षेत्र में

---

[४] मूलाचार षटावश्यक अधिकार गाथा ८१

[५] जयधवल पु० १ पृ० ९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

.पि श्री अरहंत भगवान साक्षात् विराजमान नहीं हैं तथापि प्रक उनकी प्रतिमाओं की भक्ति के द्वारा हम अपना कल्याण कर सकते हैं।

जिस प्रकार शत्रुओं की अथवा मित्रों की प्रतिमा या फोटो देखकर द्वेष और प्रेम उत्पन्न होता है, यद्यपि उस फोटो ने उपकार अथवा अनुपकार कुछ भी नहीं किया है परन्तु वह शत्रुकृत अपकार और मित्रकृत उपकार का स्मरण होने में कारण है। इसी प्रकार अरहंत और सिद्धों के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन, वीतरागतादिक गुण यद्यपि अर्हंतप्रतिमा और सिद्ध प्रतिमा में नहीं है तथापि उन गुणों का स्मरण होने में वे कारण होती हैं, क्योंकि अर्हंत और सिद्धों का उन प्रतिमाओं में सादृश्य है। यह गुणस्मरण अनुरागस्वरूप होने से ज्ञान और श्रद्धान को उत्पन्न करता है और इनसे नवीन कर्मों का अपरिमित संवर और पूर्व बँधे हुए कर्मों की महा निर्जरा होती है। इसलिये आत्मस्वरूप की प्राप्ति में सहायक चैत्यभक्ति रूप धर्म हमेशा करना चाहिये।

आत्मा का श्रद्धान--

स्व पर का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। इसमें भी स्व-स्वभाव के श्रद्धान की मुख्यता है। पर पदार्थ तो अनन्तानन्त हैं उन सबका ज्ञान व श्रद्धान होना छद्मस्थ के लिये असंभव है। स्व तो एक है जो निजरूप है अतः निज स्वभाव का ज्ञान व श्रद्धान होना सरल है। स्व-स्वभाव का यथार्थ श्रद्धान हो जाने पर उसके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं वे पर हैं ऐसे पर पदार्थों का भी श्रद्धान होना सहज है। जिसको निजघर का ज्ञान है उसको अन्य घरों का भी ज्ञान है। यदि उसको अन्य घरों का ज्ञान न होता तो उन घरों को पर घर न कहता। इसी प्रकार स्व का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धान हो जाने पर पर-पदार्थों का पररूप से श्रद्धान हो जाता है।

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥[1]

जो आत्मा (निज) को नहीं जानता वह अनात्मा (पर) को भी नहीं जानता, क्योंकि स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता-इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है। इस प्रकार जो आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता वह जीव और अजीव को नहीं जानता, तथा जो जीव अजीव को नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं हो सकता।

यद्यपि सम्यग्दर्शन का चार प्रकार निर्देश किया जाता है तथापि सबका एक यह ही प्रयोजन है कि निज आत्म-स्वभाव की यथार्थ श्रद्धा हो जावे। देव-गुरु-शास्त्र धर्म का श्रद्धान तथा सात तत्त्वों का श्रद्धान भी निज आत्म-स्वभाव के श्रद्धान का कारण होने से अथवा निज आत्म-स्वभाव के श्रद्धान रूप होने से सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन के पात्र–

चारों गति अर्थात् नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव गतियों के सादि व अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव सम्यग्दर्शन को उत्पन्न कर सकते हैं, किन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त सर्व विशुद्ध होना चाहिये। वह जीव स्त्री हो, पुरुष हो अथवा नपुंसक हो; वह जीव हीयमान कषायवाला ज्ञानोपयोग से उपयुक्त होना चाहिये। यदि वह जीव अशुभ लेश्यावाला है तो लेश्या हीयमान होनी चाहिये और यदि शुभ लेश्यावाला है तो लेश्या वर्द्धमान होनी

---

[1] समयसार गा० २०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रक चाहिये। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अथवा चतुरिन्द्रिय जीव सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं कर सकते। असंज्ञी पचेन्द्रिय व अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अथवा अभव्य जीव भी सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं कर सकते।

यद्यपि सम्यग्दर्शन सामान्य से एक प्रकार है, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर मिथ्यात्त्व, नपुंसक वेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण नामकर्म, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुवन्धो क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्री वेद, तिर्यंगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चारसंहनन, तिर्यंग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्र इन इकतालीस प्रकृतियों का संवर अथवा बंधव्युच्छिति हो जाती है; तथापि कारणों की अपेक्षा से उस सम्यग्दर्शन के अनेक भेद हो जाते हैं अर्थात् वह सम्यग्दर्शन एक प्रकार का न रहकर अनेक प्रकार का हो जाता है।

सम्यग्दर्शन की घातक प्रकृतियाँ—

सम्यग्दर्शन यद्यपि आत्मा का निज स्वभाव है, तथापि आत्मा के अनादिकाल से कर्म बंध होने के कारण उस सम्यग्दर्शन का घात हो रहा है अर्थात् सम्यग्दर्शन का अभाव होकर मिथ्यादर्शन रूप विपरीत परिणमन हो रहा है। आत्म स्वभावरूप सम्यग्दर्शन के घातक दर्शनमोह व अनन्तानुबंधी कषाय रूप कर्म हैं। दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियाँ हैं १. मिथ्यात्व प्रकृति २. सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति ३. सम्यक्त्व प्रकृति। अनन्तानुवन्धी कषाय की चार प्रकृतियाँ हैं १. अनन्तानुबन्धीक्रोध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. अनन्तानुबन्धी मान ३. अनन्तानुवन्धी माया ४. अनन्तानुवन्धी लोभ । मिथ्यात्त्व प्रकृति का उदय या अनन्तानुवंन्धी चतुष्क में से किसी एक का उदय अथवा इन दोनों का उदय सम्यग्दर्शन को सर्वथा घात करता है अथवा सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं होने देता। यदि इन सात प्रकृतियों में से मात्र सम्यग्मिथ्यात्त्व के उदय से मिथ्यात्त्व के साथ-साथ सम्यक्त्व का कुछ अंश प्रगट हो जाता है अर्थात् वीतरागदेव, निर्ग्रंथगुरु, अहिंसामयी धर्म, स्याद्वाद से मुद्रित आगम (शास्त्र) के श्रद्धान के साथ-साथ कुदेव कुगुरु कुधर्म और कुशास्त्र का भी श्रद्धान होता है अतः यह सम्यग्मिथ्यात्व रूप मिश्र भाव होता है।

उपर्युक्त सात प्रकृतियों में से दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों के प्रशस्तोपशम (अन्तरकरणोपशम) के होने पर तथा अनन्तानुवन्धी कषाय चतुष्क के अप्रस्तोपशम होने पर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन होता है। इन सातों प्रकृतियों के क्षय होने पर क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। इन सातों में सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने पर और शेष छह प्रकृतियों के अनुदय होने से क्षयोपशम अर्थात् वेदक सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम के भेद से तीन प्रकार का है। ये सातों कर्म प्रकृतियाँ यद्यपि पुद्गल हैं तथापि ये आत्म-स्वभाव के घातक होने से इनके उदयाभाव में ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। वाधक कारणों के सद्भाव में कार्य नहीं हो सकता। गधे के सींग का अभाव किसी भी कार्य के लिये कारण नहीं हो सकता, क्योंकि उनका कभी भी सद्भाव नहीं था और न हो सकता है किन्तु बाधक कारणों का सद्भाव था और आगामी भी उनका सद्भाव हो सकता है अतः कार्य के लिये बाधक कारणों के अभाव की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि कार्य के लिये बाधक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अभाव को कारण न माना जावे तो बाधक का सद्भाव हो सकेगा। कार्य की उत्पत्ति में जितनी साधक सामग्री के सद्भाव की आवश्यकता है उतनी ही बाधक के अभाव की भी आवश्यकता है। सद्भाव के समान अभाव भी कारण होता है। यहाँ अभाव का अर्थ नाश नहीं है, क्योंकि जो सत् है उसका अत्यन्त नाश नहीं होता।

तत्स्कन्धराशयः प्रोक्ता भूभृतोऽत्र समाधितः ।
जीवाद्विश्लेषणं भेदः सतो नात्यन्तसंक्षयः ॥११५॥[1]

द्रव्य कर्म की स्कन्धराशि को यहां संक्षेप से पर्वत कहा गया है। उनको जीव से पृथक करना उनका भेदन अथवा अभाव है। यहाँ भेदन का अर्थ नाश नहीं है क्योंकि जो सत् है उसका अत्यंत नाश नहीं होता।

जो जीव को परतन्त्र करते हैं अथवा जीव जिनके द्वारा परतन्त्र किया जाता है उन्हें कर्म कहते हैं। क्रोधादिक जीव के परिणाम हैं इसलिये वे परतन्त्रतारूप हैं—परतन्त्रता में कारण नहीं है। जो जिसका गुण है वह उसकी परतन्त्रता का कारण नहीं होता।[2] "यद्यपि कर्म अचेतन हैं तथापि जब कर्म प्रकृतिनिका उदय काल आवे तब स्वयमेव तिन प्रकृतिनि के अनुभाग के अनुसार कार्य बने। याका उदय काल आए वह कार्य बने, इतना ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध जानना। इस लोक विषै ऐसे निमित्त नैमित्तिक बहुत सम्बन्ध देखिये हैं। जैसे मंत्र आदि कर जल में रोगादि दूर करने की शक्ति होय है वा कंकर से विष सर्प आदि रोकने की शक्ति होय है। अपने उद्यम से कार्य करे तो ज्ञान चाहिये किन्तु निमित्त अनुसार परिणमन होने में ज्ञान का कुछ प्रयोजन नाहीं है।"

---

[1] आप्त परीक्षा। [2] "जीवं परतन्त्री कुर्वन्ति, स परतन्त्री क्रियते वा यैस्तानि कर्माणि। पारतन्त्र्यं हि जीवस्य क्रोधादिपरिणामो न पुनः पारतन्त्र्य निमित्तम्। न हि यो यस्य गुणः स तस्य पारतन्त्र्यनिमित्तम्।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार सम्यग्दर्शन की घातक इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय व क्षयोपशम इन तीन अवस्था होने का कारण आत्म परिणाम-स्वरूप सम्यग्दर्शन के भी तीन भेद हो जाते हैं। इनमें से क्षायिक सम्यग्दर्शन अतिनिर्मल है क्योंकि यहाँ पर प्रतिपक्षी सात प्रकृतियों का क्षय होगया है अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि की आत्मा में इन सात प्रकृतियों का सत्त्व न रहने से वह जीव कभी भी सम्यग्दर्शन से च्युत नहीं होगा। उपशम सम्यग्दर्शन निर्मल है। यद्यपि वहाँ पर इन सातों प्रकृतियों का उदय नहीं है तथापि ये सत्ता रूप से विद्यमान हैं। क्षयोपशम सम्यग्दर्शन मलिन है क्योंकि वहाँ पर देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय पाया जाता है। उपशम व क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में प्रतिपक्षी प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है अतः इनका सम्यग्दर्शन से च्युत होना संभव है।

निसर्ग और अधिगमज सम्यग्दर्शन—

ये तीनों ही सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होते हैं। जो वाह्य उपदेश के बिना उत्पन्न होता है वह नैसर्गिक और जो वाह्य उपदेशपूर्वक जीवादि पदार्थों के ज्ञान के निमित्त से उत्पन्न होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है। यदि यह कहा जाय कि "भव्य जीव अपने समय के अनुसार ही मोक्ष जायगा, यदि उपदेश के बल से समय से पहिले मोक्ष प्राप्ति की संभावना हो तभी अधिगम सम्यग्दर्शन की सार्थकता है। समय से पूर्व मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं है अतः एक निसर्गज सम्यक्त्व ही मानना चाहिये।" किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि, भव्यों की कर्मनिर्जरा का कोई समय निश्चित नहीं है और न मोक्ष का ही। अतः भव्यों के मोक्ष के कालनियम की बात उचित नहीं है। यदि सबका काल ही कारण मान लिया जाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो वाह्य और अभ्यन्तर कारण सामग्री का ही लोप हो जायगा।[1]

नरक में नारकी जीवों के सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति—जाति-स्मरण, धर्मश्रवण अथवा वेदनाभिभव आदि वाह्य कारणों से होती है। किन्तु चतुर्थादि नरकों में धर्म श्रवण कारण नहीं है क्योंकि वहाँ पर देवों का गमन नहीं है। जिन जीवों के ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्व के कारण या अमुक असंयम से उत्पन्न हुई है, उन्हीं जीवों के वेदनाभिभव सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण होती है। तिर्यंचों और मनुष्यों में किन्हीं के जातिस्मरण, किन्हीं के धर्म श्रवण और किन्हीं के जिनविम्ब दर्शन से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। देवों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारण धर्म श्रवण, जातिस्मरण, जिन-महिमादर्शन और देवऋद्धिदर्शन हैं। आनतादि विमानों में देवऋद्धिदर्शन कारण नहीं होता, क्योंकि इन विमानों में महार्द्धि से संयुक्त ऊपर के देवों का आगमन नहीं होता और उन्हीं कल्पों में स्थित देवों का महार्द्धि का दर्शन सम्यक्त्व की उत्पत्ति का निमित्त नहीं हो सकता, क्योंकि उसी ऋद्धि को बार-बार देखने से विस्मय नहीं होता। नौग्रैवेयक आदि विमानों में जिनमहिमा दर्शन भी कारण नहीं है, क्योंकि ग्रैवेयक आदि देव नन्दीश्वरादि के महोत्सव देखने नहीं जाते। जाति स्मरण, उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अन्तर्मुहूर्त तक ही कारण होता है। धर्मोपदेश सुनकर, देवर्द्धि को देखकर अथवा वेदनाभिभव से जातिस्मरण होता है उससे यदि सम्यक्त्व होता है, तो वह जातिस्मरण सम्यग्दर्शन का कारण नहीं माना गया है, क्योंकि वह जातिस्मरण देवर्द्धिदर्शन व धर्मोपदेश व वेदनाभिभव के पश्चात् उत्पन्न हुआ है। अतः धर्मोपदेश देवर्द्धि दर्शन व

[1] तत्त्वार्थ राजवार्तिक १—३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदनाभिभव की मुख्यता होने से उनको ही सम्यक्त्व का कारण माना गया है।[1] इन वाह्य कारणों के अतिरिक्त दर्शन मोहनीय-कर्म व अनन्तानुबन्धी कषाय का उपशम, क्षयोपशम व क्षय अंतरंग कारण भी अवश्य होता है।

नैसर्गिक सम्यग्दर्शन में यद्यपि धर्मोपदेश वाह्य कारण नहीं होता किन्तु उसमें धर्मोपदेश के बिना अन्य वाह्य कारण अवश्य होते हैं, क्योंकि जातिस्मरण और जिनविम्बदर्शन के बिना उत्पन्न होनेवाला नैसर्गिक सम्यक्त्व असंभव है।[2] क्षायिक सम्यग्दर्शन का आरम्भ केवली या श्रुतकेवली (चतुर्दश-पूर्वधारी) के पादमूल में कर्मभूमिज मनुष्य के होता है, तथापि ऐसा एकान्त नियम नहीं कि क्षायिक सम्यग्दर्शन अधिगमज हो किन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन निसर्गज भी सम्भव है क्योंकि जो जीव उसी भव में तीर्थंकर होनेवाले हैं वे केवली या श्रुत-केवली के पादमूल के बिना भी दर्शन मोह की क्षपणा का प्रारम्भ करते हैं अन्यथा तीसरे नरक से निकले हुए कृष्ण आदिकों के तीर्थंकर होना नहीं बन सकता।[3]

अधिगमज सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में यथार्थ धर्मोपदेश वाह्यकारण अवश्य होता है। यह धर्मोपदेश सम्यग्दृष्टि आचार्य द्वारा ही हो ऐसा एकान्त नियम नहीं है क्योंकि, यह धर्मोपदेश लिखित जिन सूत्रों द्वारा अर्थात् जैन शास्त्रों की स्वयं स्वाध्याय द्वारा भी हो सकता है। अथवा उन जिन सूत्रों को बाँचकर सुनानेवालों के द्वारा भी यह धर्मोपदेश हो सकता है। जैसे एक व्यापारी के पास अँग्रेजी भाषा में तार आया। वह व्यापारी अँग्रेजी भाषा नहीं जानता था अतः वह उस तार को पढ़वाने के

---

[1] धवल पुस्तक ६। [2] धवल पु० ६ पृ० ४३१।
[3] धवल पु० ६ पृ० २४७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये एक विद्यार्थी के पास गया जो अँग्रेजी भाषा जानता था। उस विद्यार्थी ने तार पढ़कर उसका शब्दार्थ कर दिया जिसको सुनकर व्यापारी को उस तार का यथार्थ भाव भास गया और व्यापार कर लाभ उठा लिया किन्तु विद्यार्थी को तार पढ़कर और उसका अर्थ करलेने पर भी तार का भाव न भासने के कारण लाभ नहीं हुआ। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि के द्वारा जिन सूत्र अर्थात् जैन शास्त्र बाँचना या जिन सूत्र अनुकूल उपदेश से सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। "कोई जीव तत्त्वज्ञान के कारण भूत अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोग के शास्त्रों का अभ्यास करे हैं, परन्तु तहां जैसे लिख्या है तैसे आप निर्णय करि आपको आपरूप परको पररूप न श्रद्धान करे है तथापि मुखतें ऐसा यथावत निरूपण करे है जिसको सुन और जीव सम्यग्दृष्टि होय जाय. क्योंकि यह तो जैसा लिख्या तैसा उपदेश दे है किन्तु आप अनुभव नहीं करे है।[४] कोई बालक स्त्री का स्वाँग करि ऐसा गान करे जाको सुनने से अन्य पुरुष स्त्री काम रूप होय जाय, परन्तु वह जैसा सीख्या तैसा कहे है, उस बालक को कुछ भाव भासे नाहीं तातैं आप कामाशक्त न होय है।" "ज्यों शिशु नाचत आपन माचत लखनहार वोराय।"

सम्मत्तस्सणिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेऊ भणिदा, दंसणमोहस्स खयपहुदी॥[५]

सम्यग्दर्शन का निमित्त जिन सूत्र अथवा जिन सूत्र का ज्ञायक पुरुष है। जैन शास्त्रों के द्वारा अथवा जैन शास्त्रों के जानकार पुरुषों की वाचना (उपदेश) द्वारा जो भावज्ञान होता है, वही सम्यक्त्व होने का निमित्त है। अंतरंग कारण दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय है। इस गाथा में ज्ञायक

[४] मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ७ [५] नियमसार गाथा ५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुष शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपदेश देनेवाला पुरुष जिनसूत्र का ज्ञायक होना चाहिये, सम्यग्दृष्टि होना आवश्यक नहीं, क्योंकि ग्यारह अंग नौ पूर्व का ज्ञायक पुरुष भी मिथ्यादृष्टि हो सकता है।

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन का जघन्य काल भी अंतर्मुहूर्त है और जघन्य अन्तर काल भी अन्तर्मुहूर्त है। अतः अमुक जीव इस समय सम्यग्दृष्टि है या नहीं यह निश्चय करना भी कठिन है। जो जीव अब उपशांत मोह ग्यारहवें गुणस्थान में है वह ही दो चार सैकिंड पश्चात् मिथ्यादृष्टि हो जाय, पुनः एक दो सैकिंड पश्चात् सम्यग्दृष्टि हो जाये। कर्म के कारण इस प्रकार के परिणमन वहुत शीघ्र होते रहते हैं। उपदेश देनेवाले पुरुष के यथार्थ देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान अवश्य होना चाहिये अर्थात् व्यवहार सम्यग्दर्शन होना आवश्यक है, क्योंकि उपदेश देना भी तो व्यवहार है। व्यवहार सर्वथा अभूतार्थ भी नहीं है। यद्यपि निश्चय की अपेक्षा व्यवहार अभूतार्थ है तथापि व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार भूतार्थ है। यदि व्यवहार सर्वथा अभूतार्थ हो जाय तो सर्वज्ञ का अभाव हो जायगा, क्योंकि केवली भगवान समस्त पर पदार्थों को जानते हैं, यह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से है। सर्वज्ञता पर आश्रित है अतः व्यवहार है क्योंकि **'पराश्रितो व्यवहारः'** ऐसा आगम का वचन है। जिन सूत्र का ज्ञायक पुरुष सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि हो, दोनों के उपदेश से अधिगम सम्यग्दर्शन हो सकता है।

पंच लब्धियाँ—

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ सर्वोपशम से होता है क्योंकि उसके दर्शन-मोहनीय कर्म की एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही प्रकृति मिथ्यात्वरूप है। सम्यक्त्व प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का उसके सत्त्व नहीं है, क्योंकि इनका सत्त्व तो सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् होता है। जिस समय तक सम्यक्त्व प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का सत्त्व न हो उस समय तक क्षयोपशम सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में सम्यक्त्व प्रकृति का उदय पाया जाता है और सम्यक्त्व प्रकृति के सत्त्व के बिना उसका उदय संभव नहीं है। अतः अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ सर्वोपशम से होता है। **"सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण"**[1] ऐसा आगम का वचन भी है। उस प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन से पूर्व पाँच लब्धियाँ होती हैं १. क्षयोपशम लब्धि, २. विशुद्धि लब्धि, ३. देशना लब्धि, ४. प्रायोग्य लब्धि ५. करण लब्धि। पूर्व संचित कर्मों के मलरूप पटल के अनुभाग स्पर्द्धक जिस समय विशुद्धि के द्वारा प्रतिसमय अनन्त गुणहीन होते हुए उदय को प्राप्त किये जाते हैं, उस समय क्षयोपशम लब्धि होती है। प्रतिसमय अनन्त गुणितहीन क्रम से उदीरित अनुभाग-स्पर्द्धकों से उत्पन्न हुआ साता आदि शुभ कर्मों के बन्ध का निमित्तभूत और असाता आदि अशुभ कर्मों के बन्ध का विरोधी जो जीव का परिणाम है उसे विशुद्धि कहते हैं; जिसकी प्राप्ति का नाम विशुद्धि लब्धि है। छह द्रव्यों और नौ पदार्थों के उपदेश का नाम देशना है। उस देशना से परिणत आचार्य आदि की उपलब्धि को और उपदिष्ट अर्थ के ग्रहण, धारण, विचारण की शक्ति के समागम को देशना लब्धि कहते हैं। सर्व कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभाग को घात करके अन्तः कोड़ाकोड़ी स्थिति में और द्विःस्थान अनुभाग में अवस्थान

---

१ कषायपाहुड़ सुत्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने को प्रायोग्य लब्धि कहते हैं। तिस अंतः कोटाकोटी सागर स्थिति बंधते पल्य का संख्यातवांभाग मात्र घटता स्थिति बंध अंतर्मुहूर्त पर्यंत समानता लिये करे। बहुरि ताते पल्य का संख्यातवां भाग मात्र घटता स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त पर्यंत करे। ऐसे क्रमतैं संख्यातस्थिति बंधापसरण के द्वारा पृथक्त्व सौ सागर घटैं पहला प्रकृति बधापसरण स्थान होइ। ऐसे इस ही क्रमतें इतना इतना स्थितिबंध घटे एक एक स्थान होइ। ऐसे प्रकृति बंधापसरण के चौतीस स्थान होइ। प्रथम बंधापसरण स्थान में नरकायु की बन्ध व्युच्छित्ति होय है। दूसरे में तिर्यंच आयु की, तीसरे में मनुष्य आयु की, चौथे में देवायु की बन्ध व्युच्छित्ति होय है। पाँचवे बंधापसरण स्थान में नरकगति व नरकगत्यानुपूर्वी की, छठे में संयोग रूप सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण की, सातवे में संयोगरूप सूक्ष्म-अपर्याप्त प्रत्येक की, आठवें में संयोगरूप वादर-अपर्याप्त-साधारण की, नवे में संयोगरूप बादर-अपर्याप्त-प्रत्येक की, दसवें में संयोगरूप वेंद्री-अपर्याप्त की, ग्यारहवे में संयोगरूप तेंद्री-अपर्याप्त की, बारहवें में संयोगरूप चौंद्री-अपर्याप्त की, तेरहवें में संयोगरूप असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-अपर्याप्त की, चौदहवे में संयोगरूप संज्ञी-पंचेंद्रिय-अपर्याप्त की बन्ध व्युच्छित्ति होय है। पंद्रहवे बंधापसरण स्थान में संयोगरूप सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण की, सोलहवे में संयोगरूप सूक्ष्म-पर्याप्त-प्रत्येक शरीर की, सत्रहवे में संयोगरूप बादर-पर्याप्त साधारण की, अठारहवे में संयोगरूप बादर-पर्याप्त-प्रत्येक-एकेन्द्रिय आतप-स्थावर की, उन्नीसवे में संयोगरूप वेन्द्रिय पर्याप्त की, बीसवे में संयोगरूप तेन्द्रिय-पर्याप्त की, इक्कीसवे में संयोगरूप चौन्द्रिय-पर्याप्त की, बावीसवे में संयोगरूप असंज्ञी-पंचेन्द्रिय पर्याप्त की बंध व्युच्छित्ति होय है। तेईसवे में तिर्यंचगति-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी-उद्योत की, चौवीसवे में नीचगोत्र की, पचीसवे में संयोगरूप अप्रशस्तविहायोगति–दुर्भग–दुःस्वर—अनादेय की, छब्बीसवें में हुंडसंस्थान सृपाटिका संहनन की, सत्ताईसवें में नपुंसक वेद की, अठाईसवें में वामनसंस्थान–कीलित संहनन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की बन्ध व्युच्छित्ति होय है। उन्नतीसवें में बंधापसरण स्थान में कुब्ज संस्थान–अर्धनाराच संहनन की, तीसवें में स्त्री वेद की, इकतीसवें में स्वाति संस्थान नाराच संहनन की, बत्तीसवें में न्यग्रोध संस्थान वज्रनाराच संहनन की, तेतीसवें में मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी के औदारिक औदारिक अंगोपांग वज्रवृषभ नाराच संहनन की, चौंतीसवें में अस्थिर, अशुभ, अयश अरति, शोक, असाता की बंध व्युच्छित्ति होती है। यह प्रकृतियों के बन्ध व्युच्छेद का क्रम विशुद्धि को प्राप्त होनेवाले भव्य और अभव्य मिथ्यादृष्टि जीवों के साधारण अर्थात् सामान्य है किन्तु पाँचवीं करणलब्धि मात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव के ही होती है, क्योंकि करणलब्धि के होने पर सम्यक्त्व की उत्पत्ति अनिवार्य है किन्तु अभव्य के सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता नहीं, अतः अभव्य के पाँचवी करण लब्धि नहीं होती।

अधःप्रवृत्तकरण—

अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के भेद से पांचवी करण लब्धि तीन प्रकार की है। अधःप्रवृत्तकरण में प्रथम समयवर्त्ती जीवों के योग्य परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। द्वितीय समयवर्ती जीवों के योग्य परिणाम भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इस प्रकार समय समय प्रति अधःप्रवृत्तकरण सम्बन्धी परिणामों का प्रमाण अधःप्रवृत्तकरण काल के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। किन्तु प्रथम समय सम्बन्धी परिणामों के प्रमाण से द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामों का प्रमाण विशेष अधिक होता है। इससे तृतीय समय सम्बन्धी परिणामों का प्रमाण विशेष अधिक होता है। इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरण काल के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। इस अधःप्रवृत्तकरण काल के संख्यात भाग करने से, एक एक संख्यातवें भाग का एक एक निर्वर्गणाकाण्डक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरण काल में संख्यात निर्वर्गणा कांडक होते हैं। एक निर्वर्गणाकांडक में जितने समय होते हैं, उतने प्रत्येक समय सम्बन्धी परिणामों के खंड होते हैं। उन खंडों में प्रथम खंड के परिणामों का प्रमाण (संख्या) सबसे कम है। द्वितीय खंड में विशेष अधिक है। उससे तृतीय खंड में विशेष अधिक है, इस प्रकार यह क्रम अन्तिम खंड तक जानना चाहिये। एक एक खंड में परिणामों का प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण है।

अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय सम्बन्धी जो प्रथम खंड के परिणाम है वह द्वितीयादि समयों के खंडों में से किसी के भी सदृश नहीं है। प्रथम समय सम्बन्धी जो द्वितीय खंड के परिणाम हैं वह द्वितीय समय सम्बन्धी प्रथम खंड के परिणामों के सदृश है। प्रथम समय सम्बन्धी जो तृतीयखंड है वह द्वितीय समय सम्बन्धी द्वितीय खंड और तृतीयसमय सम्बन्धी प्रथम खंड के सदृश हैं। प्रथम समय सम्बन्धी जो चतुर्थखंड है वह द्वितीय समय सम्बन्धी तृतीयखंड, तृतीय समय सम्बन्धी द्वितीय खंड और चतुर्थसमय सम्बन्धी प्रथम खंड के सदृश हैं। इसप्रकार यह क्रम प्रथम समय सम्बन्धी अन्तिम खंड तक लेजाना चाहिये अर्थात् प्रथम समय सम्बन्धी जो अन्तिम खंड है वह निर्वर्गणा कांडक के अन्तिम समय सम्बन्धी प्रथम खंड के सदृश है। इसी प्रकार द्वितीयादि समयों के परिणामखंड अपने से उपरितन समयवर्ती परिणाम खंडो के सदृश हैं अर्थात् अधःप्रवृत्तकरण में उपरितन समयवर्ती परिणाम खंडों की अधस्तन समयवर्ती परिणाम खंडों के साथ समानता पाई जाती है अतः अधःप्रवृत्तकरण सार्थक नाम है। यहाँ पर परिणामों की 'करण' संज्ञा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि अधःप्रवृत्तकरण का काल १६ समय हो, परिणामों की संख्या का प्रमाण ३०७२ हो और चार निर्वर्गणा कांडक हो तो प्रत्येक समय के परिणामों की और उनके खंड के परिणामों की रचना इस प्रकार होगी, अंकसंदृष्टि अपेक्षा इस प्रकार जानना चाहिये—

समय	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
प्रथम खंड	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४
द्वितीय खंड	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५
तृतीय खंड	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६
चतुर्थ खंड	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७
सर्वधन	१६२	१६६	१७०	१७४	१७८	१८२	१८६	१९०	१९४	१९८	२०२	२०६	२१०	२१४	२१८	२२२
	प्रथम निर्वर्गणा कांडक				द्वितीय निर्वर्गणा कांडक				तृतीय निर्वर्गणा कांडक				चरम निर्वर्गणा कांडक			

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधःप्रवृत्तकरण में प्रथम समय की जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। उससे द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे तृतीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है। इस प्रकार यह क्रम निर्वर्गणा कांडक के अन्तिम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि तक ले जाना चाहिये। प्रथम निर्वर्गणा कांडक की अन्तिम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि से प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। इससे द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। इस प्रकार प्रथम निर्वर्गणा कांडक के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। प्रथम निर्वर्गणा कांडक की अन्तिम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि से द्वितीय निर्वर्गणा कांडक के प्रथम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे उत्तरोत्तर प्रत्येक समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी अनन्तगुणी है, यह क्रम द्वितीय निर्वर्गणा कांडक के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। द्वितीय निर्वर्गणा कांडक के अन्तिम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि से उसी द्वितीय निर्वर्गणा कांडक की प्रथम समय सम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे उत्तरोत्तर द्वितीय निर्वर्गणा कांडक के अन्तिम समय तक प्रत्येक समय सम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। इस प्रकार यह क्रम अधःप्रवृत्तकरण के अन्तिम निर्वर्गणा कांडक तक जानना चाहिये।

इस अधःप्रवृत्तकरण में स्थितिकांडक घात, अनुभाग-कांडक घात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण नहीं होता, क्योंकि इन अधःप्रवृत्त परिणामों में पूर्वोक्त चतुर्विध कार्यों के उत्पादन करने की शक्ति का अभाव है। केवल अनन्तगुणी विशुद्धि के द्वारा प्रति समय विशुद्धि को प्राप्त होता हुआ अप्रशस्त कर्मों के द्विःस्थानीय अर्थात् निम्ब, कांजीरूप अनुभाग को समय-समय के प्रति अनन्तगुणित हीन बाँधता है, और प्रशस्त कर्मों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुड़, खाँड आदिरूप चतु:स्थानीय अनुभाग को प्रति समय अनन्तगुणित बाँधता है। यहाँ एक स्थिति बंध का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। एक-एक स्थितिबन्ध काल के पूर्ण होने पर पल्योपम के संख्यातवे भाग से हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है। इस प्रकार संख्यात सहस्रवार स्थितिबन्धापसरणों के होने पर अध:प्रवृत्तकरण का काल समाप्त हो जाता है। अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय सम्बन्धी स्थिति बन्ध से उसीका अन्तिम समय सम्बन्धी स्थिति बन्ध संख्यातगुणा हीन है। इस चरम समय में, प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुखजीव के जो स्थिति बन्ध होता है, उससे संयमासंयम व प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुखजीव के स्थिति-बंध संख्यातगुणा हीन है। इससे सकल संयम व प्रथमोपशम सम्यक्त्व अभिमुख जीव के स्थिति बन्ध संख्यात गुणा हीन होता है।

अपूर्वकरण—

अपूर्वकरण का काल भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है, किन्तु यह काल अध:प्रवृत्तकरण के काल से हीन है। इस अपूर्वकरण के काल में प्रथम समय के योग्य विशुद्धियों का प्रमाण असंख्यात लोक है। दूसरे समय के योग्य विशुद्धियों का प्रमाण असंख्यात लोक है, किन्तु दूसरे समय की विशुद्धियाँ प्रथम समय की विशुद्धियों से विशेष अधिक है। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरण के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। अपूर्वकरण की प्रथम समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है। उस प्रथम समय सम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। इससे द्वितीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है, इससे वहाँ पर ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से तृतीय समय की जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणित है। वहाँ पर ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार यह क्रम अपूर्वकरण के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। अतः इस अपूर्वकरण में एक समयवाले के परिणाम दूसरे समयवालों के परिणामों से नहीं मिलते किन्तु अपूर्व अर्थात् असमान परिणाम होते हैं इसलिये "अपूर्वकरण" संज्ञा सार्थक है।

अधःकरण में कही गई विशुद्धि, आदि चार आवश्यकताओं के अतिरिक्त स्थितिकाँडक घात, अनुभागकाँडक घात, गुणश्रेणी होती है। अपूर्वकरण का प्रथम जघन्य स्थितिखंड पल्योपमका संख्यातवाँभाग और उत्कृष्ट स्थितिखंड सागरोपम पृथक्त्व मात्र है। यह स्थितिखंड आयु कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का होता है। अपूर्वकरण के प्रथम समय में अप्रशस्त कर्मों के अनन्तबहुभाग घातना प्रारम्भ करता है। यद्यपि एक स्थितिकाँडक घात का काल और एक अनुभागकाँडक घात का काल अन्तर्मुहूर्त है तथापि स्थितिकाँडक घात काल से एक अनुभागकाँडक घात काल संख्यातगुणा हीन है अर्थात् एकस्थितिकाँडक काल के भीतर हजारों अनुभागकाँडक होते हैं। विशेषता यह है कि स्थितिकाँडकघात की चरम फाली के पतन काल में ही अन्तिम अनुभागकाँडक घात की चरम फाली भी नष्ट होती है। अर्थात् एक स्थितिकाँडक घात काल और उसमें होनेवाले हजारों अनुभागकाँडकों में से अन्तिम अनुभागकाँडक घात काल एक साथ समाप्त होते हैं।

एक स्थितिकाँडक द्वारा जितना स्थिति घात किया जाता है, उस स्थितिकाँडक घात काल के प्रथम समय में जो द्रव्य उस स्थिति में से, जिसका घात किया जा रहा है, अपकृष्ट किया जाता है उसका नाम प्रथम फाली है। इस प्रकार प्रति समय द्रव्य अपकृष्ट किया जाकर नीचे की स्थिति में दिया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थितिकाँडक घात के अन्तर्मुहूर्त काल के अन्तिम समय में, घात की जानेवाली स्थिति का शेष समस्त द्रव्य अपकृष्ट करके नीचे की स्थिति में दिया जाता है इसका नाम चरम फाली है। यह द्रव्य गुणश्रेणी रूप से दिया जाता है। अतः अपूर्वकरण के प्रथम समय में ही गुणश्रेणी भी प्रारम्भ हो जाती है, जो इस प्रकार है—

उदय में आई हुई प्रकृतियों की उदयावली से बाहिर स्थित स्थितियों के प्रदेशाग्र को अपकर्षण भागाहार के द्वारा खंडित करके एक खंड को अपकर्षण करता है। इस अपकृष्ट द्रव्य के असंख्यातवें असंख्यावें भाग को प्रथम समय से लगाकर विशेष हीन विशेषहीन क्रम से उदयावली में देता है और शेष असंख्यात बहुभाग को गुणश्रेणी में असंख्यात गुणित क्रम से देता है और गुणश्रेणी से ऊपर अनन्तर निषेक में असंख्यातगुणितहीन द्रव्य को देता है और उससे ऊपर विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य देता है जब तक कि अपनी-अपनी उत्कीरित स्थिति को आवली मात्र काल के द्वारा प्राप्त न हो जाय। इसी प्रकार अनुदय प्राप्त प्रकृतियों की भी गुणश्रेणी करता है, विशेष इतना है कि इनके प्रदेशाग्र उदयावली में नहीं दिये जाते। इसी प्रकार अपूर्वकरण के द्वितीयादि सर्व समयों में प्रदेशाग्र को अपकर्षण करके गुणश्रेणी की जाती है। विशेषता यह है कि प्रथम समय में अपकर्षण किये गये प्रदेशाग्र से द्वितीय समय में असंख्यात-गुणित प्रदेशाग्र को अपकर्षित करता है, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणित प्रदेशाग्र को अपकर्षित करता है। इस प्रकार यह क्रम सर्व समयों में जानना चाहिये। यहाँ पर गुणश्रेणी गलितावशेष है अर्थात् प्रति समय गुणश्रेणी आयाम एक-एक समय हीन होता जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनिवृत्तिकरण—

अपूर्वकरण काल समाप्त होने के अनन्तर आगे के समय में अनिवृत्तिकरण प्रारम्भ होता है। अनिवृत्तिकरण का काल भी यद्यपि अन्तर्मुहूर्त मात्र है तथापि यह काल अपूर्वकरण के काल से असंख्यातगुणा हीन है। अनिवृत्तिकरण में एक-एक समय के प्रति एक-एक ही परिणाम होता है, क्योंकि यहाँ पर एक समय में जघन्य और उत्कृष्ट परिणामों के भेद का अभाव है। प्रथम समय सम्बन्धी विशुद्धि सबसे कम है, उससे द्वितीय समय की विशुद्धि अनन्तगुणित है। उससे तृतीय समय की विशुद्धि अनन्तगुणित है। इस प्रकार यह क्रम अनिवृत्तिकरण काल के अन्तिम समय तक जानना चाहिये। एक समय में स्थित जीवों की अपेक्षा निवृत्ति या विभिन्नता जहाँ पर नहीं होती, वे परिणाम अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं; अतः अनिवृत्तिकरण सार्थक नाम है।

अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में ही अन्यस्थितिखंड, अन्य-अनुभागखंड और अन्यस्थितिवन्ध को आरम्भ करता है। पूर्व में अपकर्षित प्रदेशाग्र से असंख्यातगुणित प्रदेश का अपकर्षण कर अपूर्वकरण के समान गलितावशेष गुणश्रेणी को करता है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिकांडक घात और अनुभाग कांडकघातों तथा स्थिति बंधापसरण के द्वारा जब अनिवृत्ति-करण के काल में संख्यात भाग जाने पर अन्तरकरण होता है। अन्तरकरण के प्रथम समय में अन्यस्थितिकांडक और अन्य अनुभागकांडक का आरम्भ होता है। जितना एक स्थितिकांडक का काल है उतने काल के द्वारा अन्तर (Gap) को करता हुआ गुणश्रेणी निक्षेप के अग्राग्रसे, अर्थात् गुणश्रेणी शीर्ष से लेकर नीचे संख्यातवें भाग प्रदेशाग्र को खंडित करता है और गुण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेणी शीर्ष से ऊपर संख्यातगुणी उपरिम स्थितियों को खंडित करता है, तथा अन्तर अन्तर (Gap) के लिये वहाँ पर उत्कीर्ण किये गये प्रदेशाग्र को लेकर बन्ध में (उस समय बँधनेवाले मिथ्यात्व कर्म के साथ) द्वितीयस्थिति में स्थापित करता है और कुछ प्रदेशाग्र को अपकर्षणकर प्रथम स्थिति में देता है, किन्तु अन्तरायाम सम्बन्धी स्थितियों में निश्चित रूप से नहीं देता। इस प्रकार अन्तरकरण का कार्य समाप्त हुआ। अनिवृत्तिकरण काल के पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्त तक के उदय में आनेवाले निषेकों में से मिथ्यात्व द्रव्य का अभाव कर देना, यह अन्तर-करण का कार्य है। यह कार्य अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग शेष रहने पर एक स्थितिकांडकघात काल के द्वारा किया जाता है। जिन निषेकों में से मिथ्यात्व द्रव्य का अभाव किया गया है, उनको अन्तरायाम कहते हैं।

अन्तरकरण कार्य समाप्त होने के पश्चात् अनिवृत्तिकरण का जो काल शेष रहता है उसको प्रथम स्थिति कहते हैं और अन्तरायाम के पश्चात् जिन निषेकों में मिथ्यात्व द्रव्य है उनको द्वितीय स्थिति कहते हैं। प्रथम स्थिति से द्वितीयस्थिति में और द्वितीयस्थिति से प्रथमस्थिति तब तक आगाल प्रत्यागाल होते रहते हैं जब तक प्रथमस्थिति में आवली और प्रत्यावली (दो आवली) काल शेष रह जाता है। इसके पश्चात् मिथ्यात्व की गुणश्रेणी नहीं होती, क्योंकि उस समय उदयावली से बाहिर कर्म प्रदेशों का निक्षेप नहीं होता; किन्तु आयु कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों की गुणश्रेणी होती रहती है। उस समय प्रत्यावली से ही मिथ्यात्वकर्म की उदीरणा होती रहती है, किन्तु प्रत्यावली शेष रहने पर मिथ्यात्व कर्म की उदीरणा भी नहीं होती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तरकरण का कार्य समाप्त होने के समय से लेकर यह जीव द्वितीय स्थिति में स्थित मिथ्यात्व कर्म उपशमाता है अर्थात् उदीरणा द्वारा उदय के अयोग्य कर देता है। एक समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धों को छोड़कर शेष समस्त मिथ्यात्व द्रव्य को प्रथम स्थिति के अन्तिम समय तक उपशमा देता है। एक समय कम दो आवली मात्र नवक बंध को उपशम सम्यक्त्व के काल में उपशमाता है। प्रथमस्थिति के अर्थात् अनिवृत्तिकरण काल के अन्तिम समय तक मिथ्यात्व का उदय होने के कारण यह जीव मिथ्यादृष्टि है और मिथ्यात्व का बंध भी होता है। प्रथमस्थिति के समाप्त हो जाने के पश्चात् जब यह जीव अन्तरायाम में प्रवेश करता है तो वहाँ पर मिथ्यात्व द्रव्य के अभाव होने के कारण मिथ्यात्व का उदय न होने से प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

प्रथम समयवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व से प्रदेशाग्र अर्थात् मिथ्यात्वकर्मप्रदेशों को लेकर उनका बहुभाग सम्यग्मिथ्यात्व में देता है, और उससे असंख्यातगुणाहीन कर्म प्रदेशाग्र सम्यक्त्वप्रकृति में देता है। प्रथम समय में सम्यग्मिथ्यात्व में दिये गये प्रदेशों से असंख्यातगुणित प्रदेशों को द्वितीय समय में सम्यक्त्व प्रकृति में देता है। और उसी ही समय अर्थात् दूसरे ही समय में, सम्यक्त्व प्रकृति में दिये गये प्रदेशों की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व में असंख्यातगुणित प्रदेशों को देता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक गुणश्रेणी के द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्म को पूरित करता है जब तक गुणसंक्रमण काल का अन्तिम समय प्राप्त होता है। इस गुण-संक्रमण के पश्चात् सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाणवाला विध्यातसंक्रमण होता है। जब तक गुणसंक्रमण होता है, तब तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयु कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणी होती रहती है।

उपशम सम्यग्दर्शन—

इस प्रकार अनादि व सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के प्रथम समय में ही अनन्त संसार को छेदकर अर्द्धपुद्गल-परिवर्तन मात्र संसार कर लेता है,[1] अर्थात् अनन्तकाल तक पड़ी हुई संसार पर्यायों में से, अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल को छोड़कर, शेष समस्त सांसारिक पर्यायों का अभाव कर देता है। यह सम्यक्त्व का प्रभाव है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व मिथ्यात्व गुणस्थानपूर्वक ही होता है। इसका उत्कृष्ट व जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। इसमें मरण नहीं है। एक बार उत्पन्न होने के पश्चात् पल्य के असंख्यातवें भाग काल (असंख्यात वर्ष) तक पुनः उत्पन्न नहीं होता अर्थात् एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर पल्य का असंख्यातवा भाग काल और उत्कृष्ट अन्तर अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल है। नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र काल है, जघन्य अन्तर काल एक और अन्तर काल सात दिनरात है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या उत्कृष्ट रूप से पल्योपम के असंख्यातवें भाग अर्थात् मध्यम असंख्याता-संख्यात है। ये जीव त्रस नाड़ी के अन्दर रहते हैं। अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल के भीतर एक जीव उत्कृष्ट रूप से असंख्यातबार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। इस प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में अनन्तानुबन्धी कषाय का

[1] धवल पु० ७ पृ० १४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदय नहीं होता किन्तु प्रतिसमय स्तिवुक संक्रमण के द्वारा अनन्तानुबन्धी का द्रव्य अप्रत्याख्यानादि रूप संक्रमण कर उदय में आता है।

उपशम सम्यक्त्व का दूसरा भेद द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी है। यह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यग्दर्शनपूर्वक होता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि अधःकरण, अपूर्णकरण और अनिवृत्तिकरण के द्वारा अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ की विसंयोजना करता है। तत्पश्चात् तीन करणों द्वारा सम्यक्त्व प्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति व मिथ्यात्व प्रकृति का अन्तर कर उपशमाता है। असंयत सम्यग्दृष्टि से अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक इन चारों गुणस्थानों में रहनेवाला कोई भी जीव उपशम करनेवाला होता है।[२] अनन्तानुबन्धी चतुष्क के स्कन्धों के पर प्रकृतिरूप से परिणमा देने को विसंयोजना कहते हैं।[३] उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, पर प्रकृति संक्रमण, स्थिति कांडक और अनुभागकांडकघात के बिना ही कर्मों के सता में रहने को उपशम कहते हैं।[४] उपशम श्रेणी चढनेवाले मनुष्यों के ही यह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। यह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व एक मनुष्य भव में उत्कृष्ट रूप से दो बार तथा अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल में कुल चार बार हो सकता है। इसमें मरण भी संभव है। मरणकर वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है जो अपर्याप्त काल में ही छूटकर क्षयोपशम सम्यक्त्व हो जाता है। इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त होते हुए भी पाँच सैकिंड के लगभग है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल

[२] धवल पु० १ पृ० २११ [३] जयधवल पु० २ पृ० २१९
[४] धवल पु० १ पृ० २१२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है। नाना जीव अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व है। अधिक से अधिक द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव एक साथ ३०४ हो सकते हैं।

प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन में चौथा, पाँचवा, छठा और सातवाँ ये चार गुणस्थान होते हैं। द्वितीयोपशम में चौथे से ग्यारहवें तक आठ गुणस्थान होते हैं। उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण हो जाने पर उपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व को छोड़कर परिणामों के निमित्त से कभी मिथ्यात्व को जाता है, कभी सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त हो जाता है, कभी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को भी पहुँच जाता है और कभी वेदक (क्षयोपशम) सम्यक्त्व से मेल कर लेता है। इस प्रकार उपशम सम्यक्त्व से च्युत होने पर उपशम सम्यग्दृष्टि जीव की ये चार अवस्था होती हैं।

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन—

सम्यग्दर्शन के तीन भेदों में से दूसरा भेद क्षयोपशम अथवा वेदक सम्यक्त्व है। इस सम्यग्दर्शन में दर्शन मोहनीय कर्म की देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय रहता है और शेष छह प्रकृति (मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ) का अनुदय रहता है अतः इसका नाम क्षयोपशम या वेदक सम्यक्त्व है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि की दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होते हुए भी वह शिथिल श्रद्धानी होता है; इसलिये वृद्ध पुरुष जिस प्रकार अपने हाथ में लकड़ी को शिथिलतापूर्वक पकड़ता है, उसी प्रकार वह भी तत्त्वार्थ के विषय में शिथिलग्राही होता है, अतः कुहेतु और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुदृष्टान्तों से उसे सम्यक्त्व की विराधना करने में देर नहीं लगती है।[1]

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे॥
(गो॰ जी॰)

अर्थ—दर्शनमोह के उदय से चल मलिन अगाढ सहित जो पदार्थों का श्रद्धान होता है उसको वेदक सम्यक्त्व जानना चाहिये।

उपशम सम्यक्त्व में जिस दर्शन-मोहनीय कर्म के मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति रूप तीन टुकड़े किये थे, सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व में आजाने पर, उद्वेलना कांडकों द्वारा पुनः सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति को मिथ्यात्व रूप उद्वेलना अर्थात् संक्रमण करता है। इस उद्वेलना में पल्य का असंख्यातवा भाग काल लगता है, क्योंकि प्रत्येक उद्वेलनाकांडक में पल्य के असंख्यातवें भाग स्थिति का घात होता है और एक कांडक में अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। उद्वेलना कांडकों द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति का स्थितिघात होने पर भी जब तक पृथक्त्व सागर से अधिक स्थिति रहती है तब तक क्षयोपशम योग्य काल है अर्थात् उस समय तक क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है, उसके पश्चात् क्षयोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता किन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो सकता है।

कोई जीव क्षयोपशम योग्य काल के अन्दर मिथ्यात्व से, कोई जीव सम्यग्मिथ्यात्व से और कोई उपशम सम्यक्त्व से

---

[1] धवल पु॰ १ पृ॰ १७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं। जो जीव मिथ्यात्व से क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं उनके दो करणों (अधःकरण व अपूर्वकरण) के अतिरिक्त अन्य क्षयोपशमादि लब्धियाँ नहीं होती और अपूर्वकरण में भी स्थितिकांडक घात, अनुभाग-कांडक घात और गुणश्रेणी नहीं होती, किन्तु क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने पर मिथ्यात्व कर्म के पुनः तीन भाग करता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व में चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक चार गुणस्थान होते हैं। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ सकता क्योंकि उपशम सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व के समान यह क्षयोपशम सम्यक्त्व निर्मल नहीं है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव गिरकर मिथ्यात्व में या सम्यग्मिथ्यात्व में आ जाता है किन्तु सासादन में नहीं आता। क्षयोपशम सम्यक्त्व से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व भी हो सकता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव चारों गतियों में अनन्तानुबंधी की विसंयोजना कर सकता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य जब क्षायिक सम्यक्त्व के अभि-मुख होता है तब मिथ्यात्व प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय कर कृतकृत्य वेदक संज्ञा को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतिक, २४ प्रकृतिक, २३ प्रकृतिक और २२ प्रकृतिक ये चार सत्त्व स्थान होते हैं।

क्षयोपशम सम्यक्त्व का नाना जीव अपेक्षा सर्वकाल है, एक जीव अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ¾ सैकिंड से भी कम है, और उत्कृष्ट काल ६६ सागर है तथा जघन्य अन्तर-काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या असंख्यात है। चारों गति के संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव क्षयोपशम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते हैं। सम्मूर्च्छन-संज्ञी-पंचेन्द्रिय-पर्याप्त-तिर्यंच भी क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है किन्तु उपशम सम्यक्त्व नहीं प्राप्त कर सकता। इन जीवों के अपर्याप्त अवस्था में क्षयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता किन्तु जो नारकी या देव क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि मरकर कर्मभूमिया मनुष्यों में उत्पन्न होनेवालों के अथवा जो क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि तिर्यंच या मनुष्य मरकर वैमानिक देवों में उत्पन्न होनेवालों के अपर्याप्त अवस्था में भी क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है। इतनी विशेषता और है कि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दर्शन प्रथम नरक व भोगभूमिया तिर्यंच-मनुष्य व वैमानिक देवों के अपर्याप्त अवस्था में पाया जा सकता है।

क्षायिक सम्यग्दर्शन—

सम्यग्दर्शन का तीसरा भेद क्षायिक सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की बाधक मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक्त्व प्रकृति, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन सातों प्रकृतियों के क्षय अर्थात् सर्वथा विनाश हो जाने से क्षायिक सम्यक्त्व होता है। अतः क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव कभी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता है, किसी प्रकार के संदेह को भी नहीं करता है और मिथ्यात्वजन्य अतिशयों को देखकर विस्मय को भी प्राप्त नहीं होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम गुणस्थानवर्ती क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज पर्याप्त मनुष्य जब क्षायिक सम्यक्त्व के अभिमुख होता है वह सर्व प्रथम तीन करणों अर्थात् अधःकरण-अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण द्वारा अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन चार कषायों की विसंयोजना करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर्मुहूर्त पश्चात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, और सम्यक्त्व प्रकृति इन तीनों दर्शनमोहनीय प्रकृतियों को क्षय करने के लिये पुनः उन्हीं तीन करणों को केवली या श्रुतकेवलीके पादमूल में आरम्भ करता है। किन्तु जो स्वयं तीर्थंकर होनेवाले हैं उनको केवली या श्रुत केवली के पादमूल की आवश्यकता नहीं है। पूर्ण अधःकरण काल, पूर्ण अपूर्वकरण काल और अनिवृत्तिकरण काल के संख्यात भागों के व्यतीत होने पर प्रथम मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करता है। तत्पश्चात् संख्यात स्थितिकांडकों के द्वारा वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का भी क्षय कर देता है। उस समय सम्यक्त्व प्रकृति का स्थिति सत्त्व आठ वर्ष प्रमाण होता है और उस समय से ही सम्यक्त्व प्रकृति के अनुभाग की प्रतिसमय अपवर्तना होती है और स्थितिकांडक का आयाम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त स्थिति का घात एक स्थितिकांडक द्वारा होता है। सम्यक्त्व प्रकृति का अंतिम स्थितिकांडक होने पर यह जीव कृतकृत्य वेदक हो जाता है। सम्यक्त्व प्रकृति की अवशेष अन्तर्मुहूर्त प्रमाण गुणश्रेणीगोपुच्छाएँ अर्थात् कर्म-निषेक क्रम से गलते हैं। कृतकृत्य वेदक काल के भीतर उसका मरण भी हो सकता हैं। अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा सम्यक्त्व प्रकृति के समस्त निषेक गल जाने पर यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

नाना जीवों की अपेक्षा क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का काल सर्वदा है और एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष दो अन्तर्मुहूर्त घाट दो कोटि पूर्व अधिक तेंतीस सागर है, इसके पश्चात् अवश्य सिद्धगति को प्राप्त हो जायगा। जिस मनुष्य भव में क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ है वह उसी भव से अथवा तीसरे भव से मोक्ष जा सकता है। चौथे भव से तो अवश्य मोक्ष चला ही जायगा। चतुर्गति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की अपेक्षा क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात हैं और सिद्धगति की अपेक्षा अनन्त हैं।

सम्यग्दर्शन के भेद—

सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन के भेद से सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से जिसका स्वरूप अभिव्यक्त होता है वह सराग सम्यग्दर्शन है। रागादि की शान्ति प्रशम है। संसार से डरना संवेग है। प्राणिमात्र से मैत्री भाव अनुकम्पा है। जीवादि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप में 'अस्ति' बुद्धि होना आस्तिक्य है। मोहनीय की सात कर्मप्रकृतियों का अत्यन्त विनाश होने पर आत्मविशुद्धिरूप वीतराग सम्यक्त्व होता है। सराग सम्यग्दर्शन साधन ही होता है और वीतराग सम्यग्दर्शन साधन भी होता है और साध्य भी।[1]

सराग-वीतरागात्म विषयत्वाद् द्विधा स्मृतम्।
प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिभाक्॥

(यशस्ति० आ० ६)

व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन के भेद से भी सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है। व्यवहार सम्यग्दर्शन—मिथ्या-दर्शन के उदय से प्राप्त होनेवाला जो अश्रद्धान उसके अभाव में षट् द्रव्य नव पदार्थ का जो श्रद्धान है-वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है और यह शुद्ध चैतन्यरूप आत्मतत्त्व के विनिश्चय का बीज है।[2]

---

[1] तत्त्वार्थ राजवार्तिक अ० १ सूत्र २ वार्तिक २९–३१।

[2] पंचास्तिकाय गाथा १०७ तत्त्वप्रदीपिका वृत्ति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं जिणपण्णत्तो सद्दहमाणस्स भावदो भावे।
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदिजुत्तो ॥
(पंचास्तिकाय तात्पर्यं वृत्तिः)

अर्थ—जो पुरुष मतिज्ञान व श्रुतज्ञान के होने पर जिन प्रणीत पदार्थों की रुचि अर्थात् श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि होता है। यद्यपि कभी निर्विकल्प समाधि काल में निज शुद्धात्मा रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व को स्पर्श करता है तथापि अधिकतर बहिरंग पदार्थ रुचि रूप व्यवहार सम्यग्दृष्टि रहता है।[3]

छद्दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥१६॥
(द० प्रा०)

अर्थ—जिनवर भगवान कथित छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, और सात तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप का जो श्रद्धान करता है उसे सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिदे देवे।
निग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥९०॥
(मो० प्रा०)

अर्थ—हिंसा रहित धर्म में, अठारह दोषों से रहित देव में और निग्रंथ प्रवचन (गुरु) में श्रद्धान करना सम्यक्त्व है।

अत्तागम तच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।
ववगय असेसदोसो सयलगुणो हवे अत्तो ॥५॥
(नियमसार)

---

[3] ंचास्तिकाय तात्पर्यवृत्ति टीका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन होता है। तथा समस्त दोषों से रहित और समस्तगुणमय आप्त होता है।

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्ण पावं च।
आसव संवर णिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥१३॥
(समयसार)

अर्थ—भूतार्थ से अर्थात् विपरीताभिनिवेश रहित जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव संवर, निर्जरा, वंध और मोक्ष को जानना सम्यग्दर्शन है।

जीवादि सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥२०॥
(द० प्रा०)

अर्थ—जिनवर भगवान ने जीवादि पदार्थों के श्रद्धान को व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन कहा है। किन्तु निश्चयनय से आत्मा ही सम्यग्दर्शन है।

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रुवमप्पणो तं तु ॥४१॥
(वृहद्द्रव्य संग्रह)

अर्थ—जीवादि का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है। निश्चय से वह सम्यग्दर्शन आत्म स्वरूप है।

इस प्रकार जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान करना तो व्यवहार सम्यग्दर्शन है ही किन्तु आत्मा का श्रद्धान करना भी व्यवहार सम्यग्दर्शन है क्योंकि इसमें भी आत्मा और सम्यग्दर्शन में भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगया-भेद का नाम व्यवहार है। अथवा स्व-स्वामी अंशरूप व्यवहार है। निर्विकल्प समाधि काल में जहाँ भेद आदि का विकल्प समाप्त हो जाता है उस समय जो आत्मस्वरूप सम्यक्त्व है वह ही निश्चय सम्यक्त्व है। व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन और निश्चय सम्यग्दर्शन साध्य है। जिस प्रकार सुवर्ण पाषाण, जिससे सोना निकाला जाता है, साधन है और सुवर्ण साध्य है। इस सुवर्ण पाषाणवत् व्यवहार है। केवल सुवर्णवत् निश्चय है।

जो व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप कहा गया है सो स्वद्रव्य-परद्रव्य का कारण पाकर जो अशुद्ध पर्याय उपजा है उसकी आधीनता से भिन्न साध्य साधन रूप है सो यह व्यवहार सर्वथा निषेध रूप नहीं है, कथंचिद् महापुरुषों ने ग्रहण किया है। निश्चय और व्यवहार में परस्पर साध्य साधन भाव है। अनेकान्तवादी श्रद्धानी जीव इन दोनों व्यवहार-निश्चय-रूप सम्यक्त्व का ग्रहण करते हैं, क्योंकि इन दोनों नयों के आधीन सर्वज्ञ वीतराग के धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति जानी गई है।

सम्यग्दर्शन के विस्तृत कथन की अपेक्षा दश भेद माने गये हैं। १. आज्ञा सम्यग्दर्शन, २. मार्ग सम्यग्दर्शन, ३. उपदेश सम्यग्दर्शन, ४. सूत्र सम्यग्दर्शन, ५. बीज सम्यग्दर्शन, ६. संक्षेप सम्यग्दर्शन, ७. विस्तार सम्यग्दर्शन, ८. अर्थ सम्यग्दर्शन ९. अवगाढ सम्यग्दर्शन, १०. परमावगाढ सम्यग्दर्शन।

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीज संक्षेपात् ।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढे च ॥११॥

(आत्मानु०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. जिनेन्द्रदेव की आज्ञा से उत्पन्न होनेवाला आज्ञा सम्यक्त्व है। २. वाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित कल्याण कारक मोक्षमार्ग का श्रद्धान करना मार्ग सम्यक्त्व है। ३. उपदेश सुनने से जो समीचीन दृष्टि उत्पन्न होती है उसे उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं। ४. आचाराङ्ग सूत्र को सुनकर जो श्रद्धान हो, वह सूत्र सम्यग्दर्शन है। ५. गहन और विशाल अर्थ के बोधक बीज पदों से जो सम्यग्दर्शन होता है, वह बीज सम्यग्दर्शन है। ६. जीवादि पदार्थों को संक्षेप से जानकर जो सम्यग्दर्शन होता है वह संक्षेप सम्यग्दर्शन है। ७. विस्तार सहित श्रुतज्ञान को सुनकर जो सम्यग्दर्शन होता है वह विस्तार सम्यग्दर्शन है। ८. जिस किसी पदार्थ के निमित्त से उत्पन्न होनेवाला अर्थ सम्यग्दर्शन है। ९. समस्त श्रुत के अवगाहन से उत्पन्न होनेवाला अवगाढ सम्यग्दर्शन है। १०. केवलज्ञान के द्वारा अवलोकित अर्थ में जो परम दृढ़ श्रद्धान होता है वह परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन है।

उपसंहार—

सम्यग्दर्शन के असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम होते हैं। जिस तिस प्रकार हमको सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का अर्थात् समीचीन दृष्टि बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये। इसका उपाय निरंतर तत्त्व अभ्यास अथवा भेद विज्ञान है जो शास्त्र स्वाध्याय से उत्पन्न होता है।

तम्हा जिणमग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वेसु।
अभिगच्छदु णिम्मोहं इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ॥९०॥

(प्रवचनसार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो यह जीव अपने को मोह रहित चाहता है तो वीतरागदेव कथित आगम से विशेष गुणों के द्वारा छह द्रव्यों में से आपको और पर को जाने। यही सम्यग्दर्शन है जो मुमुक्षुओं के लिये उपादेय स्वरूप कहा गया है।

जैन उदासीनाश्रम ईसरी	ब्र० रतनचन्द जैन संयोजक–शंका समाधान विभाग बड़तलायादगार, सहारनपुर (उ० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ शुद्ध चिद्रूपाय नमः ॥

मंगलाचरणम्

मुक्ताऽमुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादिना ।
अक्षयं परमात्मानं ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥

(श्रीमद्भट्टाकलङ्क)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन का प्रभाव

यह मोक्ष-मार्ग का प्रकरण है। श्री पूज्यपाद स्वामी 'सर्वार्थसिद्धि' में लिखते हैं कि कोई भव्य जीव, जिसका संसार निकट है तथा जो आत्म-हित का इच्छुक है, वह देखता है कि एक परम पवित्र, रमणीय एकांत और भक्त जीवों को विश्राम देनेवाले तपोवन में निर्ग्रंथाचार्य महाराज विराजमान हैं। वे इतने शांत हैं कि उनकी मुद्रा से मोक्षमार्ग प्रकट हो रहा है। वे यद्यपि वचन से कुछ बोल नहीं रहे तो भी उनके शरीर से ऐसा मालूम होता है कि मानो साक्षात् मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन करा रहे हैं। पर हित का प्रतिपादन करना ही उनका कार्य है। बड़े बड़े आकर उनकी उपासना कर रहे हैं; यह सब देख वह बड़ा प्रभावित हुआ और विनय सहित पूछने लगा—भगवन्! आत्मा का हित क्या है? वह बोले 'मोक्ष'। उसने पुनः प्रश्न किया, मोक्ष का क्या स्वरूप है तथा उसकी प्राप्ति का क्या उपाय है? आचार्य महाराज ने कहा, अनादि काल से यह आत्मा कर्मों के सम्बन्ध से दुःखी हो रहा है उससे छूट जाने का नाम मोक्ष है और वह तभी सम्भव है जबकि बंध के कारणों का अभाव तथा संवर हो जावे। आस्रव का निरोध और संवर की प्राप्ति हुये बिना मोक्ष नहीं हो सकता।

यही बात स्वामी समन्तभद्र 'रत्नकरण्ड' में दर्शाते हैं 'मैं उस समीचीन धर्म को कहूंगा जो इस जीव को संसार दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में धारण करे।' उत्तम सुख कब प्राप्त हो जब कर्म का निवारण हो। कर्म का निवारण करनेवाला जो होय सो धर्म है। उस चीज को चाहे किसी नाम से कहलो, यदि कर्म को निवारण करनेवाला है तो वह धर्म है। वह धर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक शुद्धोपयोग रूप ही है। शुभोपयोग तो उसका सहायक होगा। 'सम्मेदशिखर' की बन्दना को गये, लम्बा मार्ग होने से किसी छायादार वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। जितना विश्राम है उतना तो चलने में बाधक ही है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु वह अभीष्ट स्थान तक पहुँचने में सहायक है। इसी तरह शुभोपयोग को जानना चाहिये।

'प्रवचनसार' में लिखा है कि वीतराग चारित्र से मोक्ष ही होगा। वह पूर्ण चारित्र जब तक नहीं हुआ तब तक वह सराग चारित्र मनुष्य और देव के विभव रूप क्लेश को प्राप्त करायेगा। विचारने की बात यह है कि क्या चारित्र से बंध होता है? वास्तव में पूछो तो चारित्र से बंध नहीं, निर्जरा ही है किन्तु उसके साथ जो रागांश मिला है वह बंध का कारण है। सुवर्ण में आठ आना भर चांदी मिली तो वह शुद्ध सुवर्ण के भाव नहीं विकायेगा। दशवें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ विद्यमान है तब तक आत्मा की निर्मल अवस्था प्रत्यक्ष नहीं।

अब देखिये, कर्म की १४८ प्रकृतियों में श्रेष्ठ प्रकृति तीर्थंकर की है जिसका बंध सम्यग्दर्शन के सद्भाव में ही होता है। सोलह कारण भावनाओं में से प्रथम भावना 'दर्शनविशुद्धि' की है तो जिस जीव के अपाय विचय धर्मध्यान में बैठकर ऐसा शुभ विकल्प आया कि ये जगत के प्राणी मोह के वशीभूत हो कितना दुःख उठा रहे हैं; उन्हें मोक्ष का मार्ग कैसे मिले, ऐसा विशिष्ट शुभ परिणामवाला जीव ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है। तीर्थंकर प्रकृति बंधवाला जीव अधिक से अधिक तीन भव से मुक्त हो जाता है।

मोक्ष का उपादान कारण आत्मा है और आत्मा ज्ञान प्रमाण है, इस वास्ते एक ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनके संस्कार अच्छे होते हैं, वे स्वर्ग में पहुंचकर सुख-सामग्री के बीच में भी सुख नहीं मानते। यह तो वहां की बात रही, जहाँ दुख ही दुख है ऐसे नरक का नारकी, जिसे सम्यग्दर्शन हो चुका है, अपने विशुद्ध परिणामों के बल से तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव करता है। छहढाल में लिखा है :—

कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान विन कर्म झरैं जे,
ज्ञानी के छिन माँहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।

यह सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य है जो अज्ञानी कोटि जन्मों में तप करके भी जितने कर्मों की निर्जरा करता है, उतनी निर्जरा ज्ञानी एक क्षण भर में अनायास कर लेता है। यह क्या कम विलक्षणता है कि सम्यग्दृष्टि विषय सेवन करता हुआ भी उनका असेवक कहलाता है। कोई चीज तो होगी भइया! वह सबसे उदासीन है। आत्म-हित में सदैव सचेष्ट है। उसका इतना बल है जिसकी कोई तौल नहीं।

'संयम धर न सकै पै संयम धारन की उर चटाचटी'

संयम धारण करने में यद्यपि वर्त्तमान में वह असमर्थ है फिर भी संयम की ओर बराबर रुचि लगी हुई है। जब काल पाकर संयम धारण करता तब अशेष कर्मों का नाश करता हुआ अपनी आत्मा को शीघ्र पा लेता है।

सम्यग्दर्शन की अचिन्त्य महिमा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म जागरण का पथ

आत्मा जिस भाव को करता है उसका वह कर्त्ता होता है। ज्ञान के भाव ज्ञानी करता है और अज्ञान के भाव अज्ञानी करता है। अब देखिये, मनुष्य पर्याय मिली, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हो गये, समझने की शक्ति भी आगई, अगर उस तरफ उपयोग न लगाया तो कैसे भला होगा ? उपयोग को संभालने की जरूरत है।

यह वृद्धावस्था है जिसमें बैठना भी ठीक तरह से नहीं बनता, बोलने की शक्ति जाती रही, जबर्दस्ती बुलवाना चाहो तो बुलवालो लेकिन हमारा भीतर का अभिप्राय नहीं है। सम्यग्दृष्टि के और क्या बात हो जाती भइया ! वह चाहता नहीं है पर करना पड़ता है। यह हमारी अवस्था देखलो। हमसे पूछते हो तो आप लोगों को हमसे शिक्षा लेना चाहिये कि वृद्धावस्था में ऐसी पराधीन अवस्था हो जाती है। इस वास्ते हमारा तो आपसे यही कहना है कि इस अवस्था में अपना कल्याण कर लेवे ; यदि चूक गये तो वही अंधे की सी हालत हो जायेगी।

एक अंधा था सो चौरासी कोठे का द्वार खोजता फिरे। वह धीरे-धीरे एक एक कोठे के सहारे चलता गया, और ज्योंही दरवाजा आया कि उसी समय वह अपना सिर खुजाने लग गया। परिणाम यह हुआ कि वह दरवाजा छोड़कर आगे बढ़ गया और इस तरह वह फिर उन कोठों के सहारे चक्कर काटने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये विषय की खुजली ऐसी ही होती है। जिस जीव ने इन विषयों से बचकर अपना कल्याण कर लिया वह तो धन्य हो गये और जो इसी में फँसे रहे उनके लिये यह चौरासी (योनि) का चक्कर तैयार है।

अज्ञान किसने बना दिया। ज्ञान के साथ जो मोह का सम्बन्ध है उसने बना दिया।

हमारी मोही दृष्टि है भइया! तो किसी को अच्छा बनाते और किसी को बुरा बनाते। इस नीम को हाथी के सामने डालदो तो नहीं खायेगा और इसी को ऊँट के सामने रखदो तो वह बड़े चाव के साथ खाजायेगा। विचार करके देखो तो वह नीम न अच्छी है न बुरी, जैसी थी वैसी ही है। हाथी की प्रकृति के अनुकूल न था इसलिये उसने नहीं खाया, ऊँट की प्रकृति के अनुकूल था सो उसने खा लिया। हम अपनी प्रकृति से दूसरी चीजों को अच्छे और बुरे होने का फतवा दे देते हैं; ज्ञान में यह कल्पना है, इसीको दूर करो।

कहते. तीर्थंकर का रूप अत्यन्त सुन्दर है। वह सुन्दरता विचारो तो पुद्गल का परिणमन ही है। रूप, रस, गंध, स्पर्श के सिवाय और सुन्दरता है क्या? उनका आहार स्वर्ग से आता तो इसमें कौन विलक्षण बात? वो भी तो पुद्गल ही है। भगवान के समवसरण की विभूति देखते ही बनती है। सब पुद्गल का ठाठ है, मिटनेवाली चीज है।

राग को क्या मिटाना? जो चीज स्वयं मिटनेवाली है उसे बार-बार क्यों बुलाते? ज्ञान अपनी चीज है, तीनों काल उसका आत्मा से तादात्म्य है। राग उदय में आगया तो आजाओ किन्तु आगामी अभिप्राय मत करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवानदास वकील थे । एक ने पूछा-सुखी बनने का क्या उपाय है ? तो वह बोला—देखो, हमने जैनों की भी संगति की, अच्छे वकील वैरिस्टरों के सम्पर्क में भी रहे । हमारे तो ध्यान में यह आई कि अपने को छोड़कर सबको भूल जाओ। इन सबको अपना मान लेते तो तमाम विकल्प ही विकल्प लग जाते। पर को अपना न मानो यही भूल जाने का मतलब है।

ईसरी में ही एक अध्यापक था । किसी ने आकाशगामिनी विद्या सिद्ध होने का मंत्र बता दिया। वह मंत्र सिद्ध करने में इतना तल्लीन होगया कि अभी तक उसका पता नहीं। अपनी योग्यता देखनी चाहिये । मुनिराज की शान्ति विद्याओं के चमत्कार से नहीं बल्कि मोह के अभाव से है।

अपना और पर का भेदज्ञान नहीं हुआ तो अज्ञानी के अज्ञानी हैं। पर को जान लेना और बात है और पर को अपना मान लेना और बात है।

अब देखिये, कर्त्ता हुआ नैमित्तिक भावों का। वह विकार अपने में ही तो हुआ। यदि अपने न मानो तो दश-लक्षण क्यों पालते ? क्यों उपवास करते ? संयम की क्या जरूरत है ? इतना अवश्य है कि ये भाव नैमित्तिक हैं, निमित्त से पैदा हुई चीज है, इस वास्ते स्वरूप से न होने के कारण मिटाने का प्रयत्न करते ।

श्रद्धा मजबूत रखना चाहिये। रामायण में वर्णन आता है कि एक भीलनी थी । उसे जब यह मालूम पड़ा कि अयोध्या-वासी श्री रामचन्द्र महाराज यहाँ आ रहे हैं तो और कुछ नहीं बना तो बेरों को ही चख-चख करके अच्छे बेर रख लिये और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खराब फेंक दिये। जब आये तो प्रेम विह्वल हो करके वे झूँठे ही बेर उन्हें खाने को समर्पण कर दिये।

मेंढ़क के पास क्या था ? अपने मुख में एक कमल पाँखुडी ही लेकर भगवान की पूजा के वास्ते चल दिया। उस असक्त अवस्था में और क्या कर सकता था, बताइये। अंतरंग की तरफ दृष्टिपात हो जाय तो सब काम बन जाय।

अज्ञानी के स्वपर विवेक के अभाव में सब काम उल्टा है और ज्ञानी के ज्ञानमय भाव होने से जो कार्य करे सो अच्छा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मज्ञान सहज़साध्य है

जीव और पुद्गल की एक बंध पर्याय है । बंध पर्याय दो की होती । उस काल एक दूसरे को व्यतिरेक करना चाहो तो नहीं कर सकते । इतने पर भी दो एक तो नहीं होगये । द्रव्य दृष्टि से देखो तो वह जुदा है और वह जुदा है । जीव अपने स्वरूप से जुदा है और पुद्गल अपने स्वरूप से जुदा है ।

अध्यात्म में दो नय प्रधान हैं—एक निश्चय और दूसरा व्यवहार । व्यवहार विना कथन नहीं किया जा सकता । वह व्यवहार नय सर्वथा झूँठा नहीं है ।

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरसीहि ।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

जो परम भाव को अनुभव करते हैं, वे शुद्ध नय का अवलंबन करते और जो अपरम भाव में स्थित हैं वह व्यवहार नय को ।

जिनको अन्तिम पाक का सोना चाहिये, वे नीचेवाले पाक को नहीं लेंगे । उसी तरह शुद्ध उपयोगवालों को शुद्ध नय और जो व्यवहार में है, उनको व्यवहार नय कार्यकारी है; क्योंकि उन्हें वस्तु के उत्कृष्ट रूप का अनुभव नहीं हो सकता ।

व्यवहार नय के बिना प्रवृत्ति का नाश होता और निश्चय को नहीं मानने से वस्तु का स्वरूप नहीं जाना जाता ।

उभयनय विरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिनवचसि रमंते ये स्वयं वांतमोहाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सपदि समयसारं, ते परं ज्योतिरूच्चैं—
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ॥

उभय नय का जो विरोध है (एक नय कुछ कहता और दूसरा कुछ) उसको ध्वंश करनेवाले 'स्यात्' पद करके मुद्रित ऐसे जिनेन्द्र भगवान के वचन में जो रमण करते हैं, वे मोह को उगलते हुये उच्च, परम ज्योतिवाले शुद्ध आत्म-तत्त्व को शीघ्र ही देखते हैं। वह आत्मा कैसा है ? नवीन नहीं है। एकांत पक्ष से खण्डित नहीं होता है। जो शुद्ध है, अशुद्ध नहीं इत्यादि विरोध को मेटता। वह शुद्ध है द्रव्य से और पर्याय से अशुद्ध भी है। नित्य भी है और अनित्य भी है।

द्रव्यार्थिकनय द्रव्य को मुख्य और पर्याय को गौण करके कहता और पर्यायार्थिकनय पर्याय को मुख्य और द्रव्य को गौण करके कहता है।

पहले पद में व्यवहार प्रयोजनवान है, तो भी निश्चयनय को देखनेवाले के लिये कुछ नहीं हैं।

इस वास्ते किसी भी नयपक्ष को ग्रहण न करे। एक पक्ष नित्य कहता और एक पक्ष अनित्य कहता ऐसे सर्वथा नयों के पक्ष से वस्तु का स्वरूप प्राप्त नहीं होता; किन्तु जो तत्त्ववेदी पुरुष हैं वह वस्तु स्वरूप जान करके एक चैतन्य आत्मा का ही शरण ग्रहण करते हैं।

ये नय श्रुतज्ञान के विकल्प हैं। ये विकल्प लहरियाँ कबतक हैं ? जब तक मोह का संबंध बना है। रात्रि का अंधकार तभी तक है जब तक सूर्य का प्रकाश नहीं होता। जिस काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस जीव के ज्ञान-भानु उदय होता है तो सर्व कल्पनाएें विलीन होजाती हैं।

पं० मूलचन्दजी अच्छे विद्वान ब्राह्मण थे। उनके पास मैं पढ़ता था। एक दिन पण्डितजी ने एक बर्तन साफ करने को दिया। सो मैंने अपनी चतुराई से उस बर्तन को खूब साफ किया। पंडितजी प्रसन्न होगये। दूसरे दिन हुक्का साफ करने को दिया। उस हुक्का में से इतनी गन्ध आई जो मुझे अच्छी न लगी। पहले तो मैंने चिलम ली, सोचा जरा देख तो लूं ! सो यों चिलम मुंह के पास लाया कि जल गया, उसी समय चिलम फोड़ दी। फिर सोचा कि चिलम फोड़ने से मज़ा नहीं आया। सो मैंने तत्काल हुक्का के भी तीन टूका कर दिये।

गुरुजी बड़े नाराज़ हुये। मैंने सब बात कहदी कि मैं इस तरह जल गया था सो गुस्से में आकर तोड़ दिया।

मैंने पूछा— गुरुजी ! इसमें तुम्हें कौनसा मज़ा आता, मुझे तो भारी दुर्गंध मालूम पड़ती है। गुरुजी ने पूछा तो नहीं पीना चाहिये। मैंने कहा —इसमें हम क्या कहें, आप स्वयं विज्ञ हैं। उसी समय गुरुजी ने भी कह दिया, अच्छा आज से हमने हुक्का पीना छोड़ दिया।

ज्ञान होने पर मोह का ठाठ सब मिट जाता। ठाठ बनाने-वाला मोह ही है। मोह नहीं हो तो ज्ञानावरणादि को कौन रक्खे ? अन्त में वे भी नष्ट हो जाते, यही आचार्य महाराज कहते -

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनेन्द्र का इतना उपदेश है कि रागी जीव कर्मों को बाँधता है और वैराग्य को प्राप्त हुआ जीव कर्मों से छूटता है, इसलिये भो भव्य जीवो ! तुम कर्मों में राग मत करो।

राग न करने का प्रयोजन है राग को अपना स्वरूप न मानो। 'पञ्चास्तिकाय' में लिखा है कि भगवान का उपदेश है 'यदि साक्षान्मोक्ष की अभिलाषा है तब हमसे भी राग छोड़ो।' अगर नहीं छोड़ोगे तो स्वर्ग मिल जावेगा सो उतें पड़े रहो।

तारीफ तो यही है कि तुम्हारे अन्दर जो सबसे बड़ा ऐब राग है, उसे छोड़ो। अगर पार होना चाहते हो तो राग छोड़ना पड़ेगा।

निरोग अवस्था का लाभ तभी हो सकता है जब किसी सहारे की जरूरत न हो। ६ भक्ति न सही ८ भक्ति करो तो चल जायेगा मगर अभिप्राय शुद्ध होना चाहिये। मल्लजी साहब ने लिखा है कि यदि ऊपर नहीं चढ़ सकते तो नीचे ही रहो। नीचली अवस्था में जितना पले उतना पालो। ऊंचा पद लेकर नीच क्रिया करना ठीक नहीं। अगर कुछ भी नहीं बन सकता है तो केवल श्रद्धा ही रखो। श्रद्धावान् व्यक्ति भी मोक्ष का पात्र होता है। उक्तं च,

जं सक्कइ तं कीरइ जं पण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं॥

इसी का यह सोरठा है—

कीजै शक्ति प्रमाण शक्ति बिना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान अजर अमर पद भोगवै॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धा बड़ी चीज है। श्रद्धा होगी तो कुछ न कुछ अंश पल जायेगा, कोई कठिन बात नहीं।

'श्रद्धावांल्लभते सुखं'

आगे बोलने की शक्ति नहीं भइया ! अब भगत जी महाराज से सुनो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्ज्ञान के आलोक में

मोक्षमार्ग में दो द्रव्य मुख्य कहीं–जीव और अजीव। अजीव के पांच भेद– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इसमें दो द्रव्य तो अनुभवगम्य हैं, शेष चार द्रव्य आगमगम्य हैं। जीव में एक ज्ञान गुण की ही विशेषता है। ज्ञान को छोड़कर और किसका व्यवहार होता? ये सारा ठाठ ज्ञान का परिणमन ही तो है। हम दुनियां को जानते किन्तु अपने आपका ज्ञान नहीं करते। सच पूछो तो ज्ञान अपना ही ज्ञान कराता, उस ज्ञान की कीमत है। अतः पदार्थों का लक्ष्य छोड़कर अपनी आत्मा का ध्यान करो।

अब ध्यान भी क्या करें? राग द्वेष मोह नहीं छूटेंगे तो कैसे भला होगा? आत्मा को यों कह दिया कि यह जीव अनादि से पर में आत्मबुद्धि किये हुए है इसलिए वहां से छुड़ाकर अपने आपका ज्ञान कराया है।

जैसे धर्म-शुक्ल ध्यान हैं वैसे आर्त-रौद्र भी तो हैं। एकाग्र-चित्त का होना वो ही को नाम ध्यान है। आर्त-रौद्र ध्यान में भी तो एकाग्रचित्त होता। दोष इतना ही है कि इसमें रागद्वेष मोह लगा है, उसमें वह बात नहीं है। अन्त में छोड़ना रागादिक को ही है।

श्रद्धा तो कोई न कोई चीज की होगी। कुदेव, कुधर्म, कुशास्त्र का त्याग इसलिये बतलाया कि इनसे विपरीत श्रद्धा होती, मिथ्यादर्शन की पुष्टि होती। इनके त्याग से मिथ्यादर्शन का त्याग ही बतलाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवृत्ति का अंश ही बुरा है। जितनी प्रवृत्ति है उतना बंध ही है। अब स्वदार सन्तोष है। इसमें भी देखा जाय तो जितनी परदार निवृ्त्ति हुई उतना चारित्र हुआ और स्वदार संतोष में तो बंध ही है। निवृ्त्ति का अंश चारित्र है। महाव्रत में जितनी प्रवृत्ति है उतना बंध है और जितनी निवृ्त्ति होगई उतने अंश में चारित्र है। तत्त्व एक निवृ्त्ति रूप ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वात्म-हित

मोक्ष क्या है ? निखिल कर्मपक्ष का क्षय हो जाना वो ही का नाम मोक्ष है।

कर्म क्या करता ? मोक्ष के हेतु को रोक देता है। चीज़-चीज़ में ही होती। योग्यता कहीं जाती नहीं ! द्रव्यलिंगी नहीं सीजता लेकिन भावलिंगी तो सीजता। भावलिंगी मुनि के उप-देश से लोग मोक्ष-मार्ग में लगते फिर यह सिद्धान्त कहां रहा कि एक द्रव्य दूसरी द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता ? जब भावलिंगी मुनि कारण हैं तो द्रव्यलिंगी भी हो गये। निमित्त में तो फर्क नहीं आया। दिव्यध्वनि से कुछ नहीं होता तो हजारों जीव मोक्ष-मार्ग में कैसे लग गये ?

कई लोग कहते हैं कि यह जीव अनेकों बार केवली के सम-वसरण गया, उपदेश सुना फिर मोक्ष क्यों नहीं हुआ ? इसका उत्तर यों दिया।

'न ह्येककारणप्रभवं कार्यं सामग्रीप्रभवत्वात्कार्याणां'

कार्य एक कारण से नहीं होता किन्तु अनेक कारण-कूट सामग्री से उत्पन्न होता है। जब समस्त अविकल कारण-कलाप उपस्थित हो जाय तो कोई कारण नहीं कि कार्य न हो।

स्वामी समन्तभद्र लिखते हैं—

वाह्येतरोपाधि - समग्रतेयं,
कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवाऽन्यथा मोक्ष-विधिश्च पुंसां,
तेनाऽभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्योत्पत्ति में अन्तरंग वहिरंग कारणों की पूर्णता होना ही द्रव्यगत निज स्वभाव है। अन्यथा मोक्ष की विधि नहीं वन सकती।

द्रव्य अन्यथा नहीं होता पर परिणमन तो नाना होते हैं। भगवान आदिनाथ ने ८३ लाख पूर्व ग्रहस्थ अवस्था में बिताए। वह क्या सम्यग्ज्ञानी नहीं थे? अब कहो उतने काल बाद ही योग्यता आई तो इसका कोई क्या करे? उस योग्यता के विकास में कोई निमित्त चाहिये या नहीं।

श्वेताम्बर में एक कथा है—

एक साधु ने यह प्रतिज्ञा करी कि आज हम वेश्यालय में जाकर सामायिक करेंगे। आचार्य महाराज से आज्ञा मांगी। उन्होंने साधु को योग्य जान करके आज्ञा देदी। वहां जाकर साधु ने एकासन से ध्यान जमाया। वेश्या ने तव खूब हाव-भाव, विभ्रम-विलास किया पर उनका चित्त दोलायमान न हुआ। अपनी सामायिक पूर्ण करके स्वस्थान वापिस आगये।

उसी संघ में एक दूसरे मुनि थे। उसने भी विचार किया कि वहां जाकर हम भी सामायिक करेंगे। आचार्य महाराज ने रोका लेकिन वह कहने लगा, जैसे यह मुनि थे वैसे क्या हम नहीं हैं? आज हम भी अपना आसन जमाकर वापिस आएंगे। ये वहां पहुँचे तब तुरन्त ही वेश्या ने उसी तरह नाच-गाना शुरू कर दिया। जो हाव-भाव का प्रदर्शन किया कि इसका चित्त विकृत हो गया। तब आचार्य महाराज ने धिक्कार दिया। वह वेश्या भी वहां आई और कहने लगी, इसके निमित्त से मैंने भी गल्ती की है, इस वास्ते मुझे भी प्रायश्चित्त देकर साध्वी बनालो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो अपने २ योग्यता की विशिष्टता भी होती है। पात्र पात्र सब बराबर पर उनमें कुछ तो अन्तर होता है। देखलो, एक योग्य था एक नहीं था।

अब ये श्वेत वस्त्र है, मल के संबंध से मलीन हो जाता इसी तरह आत्मा का ज्ञान गुण भी अज्ञान के संबंध से मलीन हो जाता है।

अपनी पिछान—

जैन-धर्म का सिद्धान्त है कि अपने को पहिचानो। राग-द्वेष अपना ही किया परिणाम है। चेतन की पर्याय चेतन ही होगी, जड़ नहीं होगी। अब उसे आप चिदाभास कहदो पर होते चित् (जीव) में ही हैं जिसके सबब से ज्ञानावरणादिक का बंध हो जाता।

अगर ज्ञानावरणादि को मिटाना है तो इनकी जड़ को मिटाओ। यह बात अन्तरंग से होती भइया! अगर तत्त्व-दृष्टि से विचारो जो अपने को मोक्ष का कारण मानते हो तो बंध का भी कारण अपने को मानो। बंध कोई करे और मोक्ष कोई करे ऐसा सिद्धान्त नहीं। अज्ञानावस्था में बंध है तो अज्ञानावस्था में ही दुःख भी है। अगर दुःख से छूटना चाहते हो तो सुख के कारणकूट मिलाओ।

कुत्ते को लाठी मारी जाती तो वह लाठी को ही चबाने लगता है, तो आदमी दूसरी लकड़ी से मारने लगता है, इस तरह पिटता रहता लेकिन सिंह का यह कायदा है कि वह लाठी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न चबाकर उस व्यक्ति पर हावी होता है जिसने लाठी मारी है। अज्ञानी वाह्य पदार्थों पर लौटता पर ज्ञानी इसकी जड़ पकड़ता है। अभिप्राय की ही तो बात है।

जब तक राग द्वेष मोह भाव हैं तब तक अज्ञान है। रागादि भाव नहीं होवें, ऐसा प्रयत्न करो जिससे सिद्धगति प्राप्त होने में देर न लगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्ध स्वरुप का निश्चय

विषयों को छोड़ेगा तो निमित्त कारणों को भी छोड़ेगा। पहले कहा था कि अरहंत के द्रव्य गुण पर्याय को जाननेवाला अपने को जानता।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये तत्त्व को जानने से मोह का क्षय होता।

तत्त्व समझ में आ जाय, तो बड़ी बात है। जिनके घट में आगया, उनका काम बन गया।

आगम को अन्यथा करना सबसे खराब बात है। बनारस में एक सीताराम पण्डित था। आयु ४० के लगभग होगी। वहीं पर एक कात्या शास्त्री रहते थे जिसकी बहिन विधवा होगई थी।

एक समय सीताराम पण्डित ने उसे दूसरे के घर जाते हुये देख लिया। उसके दुश्चरित्र का अनुमान लगाकर पण्डित ने पूछा कि तुम वहाँ क्यों आती जाती हो ? वह बोली—पण्डित जी ! यह बताओ, क्या तुम्हारे इच्छा नहीं होती ? अगर हम तुम्हें चाहें तो क्या तुम हमें नहीं चाहो ?

गर्ज यह कि कुछ दिन बाद उन्होंने उस विधवा को अपने पास रख लिया। करीब ५० वर्ष की अवस्था तक उनके दो सन्तानें हुईं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन समाजवालों को बुलाकर उसका त्याग करना चाहा और समाज में मिलना चाहा पर लोग उसे मिलावें नहीं। वह कहने लगा—देखो, हमारे दो सन्तानें हैं, ये जितनी भी सम्पत्ति है, वह हम इन पुत्रों के नाम किये देते हैं, हमें समाज में मिलालो तो बड़ी कृपा होगी।

फिर भी लोग तैयार नहीं हुये तो वह बोला—शास्त्रार्थ करलो। १५ दिन बाद शास्त्रार्थ करने का निर्णय हुआ। एक वृद्ध बोला, भाई! यह क्या करते, यह सीताराम पण्डित है, मालूम नहीं बाद में क्या कर देगा?

इस अन्तराल में पण्डितजी ने एक शास्त्र तैयार किया जिसमें विधवा-विवाह को पुष्ट किया गया था। दूसरे दिन शास्त्रार्थ के लिये सब पण्डित एकट्ठे हुये, और जब इसने कहा, देखो! शास्त्र में ऐसा लिखा है तो सब चुप हो गये, और उसे जाति में मिलाने को सब राजी हो गये।

तब वह वृद्ध बोला, हमने पहिले ही कहा था कि यह पण्डित उपद्रवी है। न जाने आगे क्या परम्परा बिगाड़ेगा?

उसी समय वह घर गया और चुपके से उस शास्त्र को जला दिया, पंचों से निवेदन किया कि इसका हमको प्रायश्चित्त दो कि हमने एक नकली शास्त्र की रचना कर महापाप किया।

जितना करने से पाप नहीं, जितना लिखने से है। तो अरहंत भगवान का ज्ञान होना मोह के क्षय करने का उपाय है।

ज्ञानी आत्मा स्व को स्व जानता और पर को पर जानता। अपने को चैतन्य स्वरूप तथा पर को पर रूप जानता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो आत्मा अपने को निर्मोही बनाना चाहता है, वह गुणों के द्वारा अपने को जाने।

अन्तर्बहिर्मुख प्रकाशशाली है चैतन्य आत्मा, सो समान जातीय और कोई असमानजातीय द्रव्यों को छोड़ अपनी आत्मा में अन्य सबके लक्षणों से अपने को पृथक् कर, मैं आकाश नहीं, धर्म द्रव्य नहीं, अधर्म द्रव्य नहीं, पुद्गल नहीं, काल नहीं, आत्मान्तर नहीं, जैसे अनेक दीपक जुदे-जुदे हैं, इसी तरह मेरा चैतन्य स्वरूप आत्मा सबसे पृथक्, अपने को जनाता हुआ, निश्चित हो गया है स्वपर का विवेक जिसके, वह मोह का क्षय करता है।

कहते, सादृश्य अस्तित्व के द्वारा सब समान हैं, परन्तु स्वरूप अस्तित्व की दृष्टि से अलग-अलग हैं, सो उन्हें (चेतन अचेतन पदार्थों को) जो उस रूप नहीं जान सके ऐसा श्रमण द्रव्यलिंग धारण करके भी साधु नहीं है।

जैसे सुवर्ण के अज्ञान से सुवर्ण का लाभ नहीं होता, उसी तरह पदार्थान्तरों से भिन्न आत्मा का जो ज्ञान नहीं करते; उन्हें निर्वाण का लाभ नहीं होता।

उपसंहार करते हैं कि—

साम्य भाव को प्राप्त कर आत्मा उस समय धर्मरूप हो जाता; क्योंकि द्रव्य जिस समय जिस अवस्था को प्राप्त होती है, वह उस समय उस रूप हो जाती।

तो शुद्धोपयोग के बल से उसके विरोधी अशुभ और शुभ उपयोग को हटाता हुआ संवेदन स्वरूप और आनन्दरूप ....

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदम अनाकुल होकर, मोह की दृष्टि को जिसने बिलकुल अलग कर दिया, वही श्रमण (साधु) है।

आत्मा ही तो धर्मरूप होता, उसका घात करने वाला कौन है ? मोह।

सो आगम में कुशल आत्मा ज्ञान के द्वारा मोह का ऐसा घात करता, कि फिर जीवित नहीं होता।

कहते—वीतराग सूत्र से अवतार है जिसका, और नाश कर दिये हैं समस्त प्रतिबंध जिसने ....ऐसा भगवान का जो शब्द ब्रह्म है वह कल्याण के लिये हो।

संसार है जब से, तब से लगी हुई मोह की ग्रन्थि जिससे नष्ट होती, ऐसे शुद्धोपयोग के प्रसाद से धर्म होता।

सो ऐसा शुद्धोपयोगी, ज्ञान तत्त्व में लीन होकर निष्कलंक अवस्था को प्राप्त करता है।

आत्मा में अपने ज्ञान का निश्चय करके, सम्पूर्ण अर्थों को जानकर अपने स्वरूप में ऐसा लीन हो जाता है कि केवल (शुद्ध) वही रह जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुख की खोज

जो पर की अपेक्षा करता वह परोक्ष है, और जो पर की अपेक्षा नहीं करता वह प्रत्यक्ष है।

इन्द्रिय पर द्रव्य हैं, सो उनके द्वारा जाना हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल आत्मा से जो जाना जाता वही प्रत्यक्ष होता है।

यही प्रत्यक्षज्ञान सहज सुख का साधन है।

सुख का लक्षण क्या है? निराकुलता। जिसके जितनी निराकुलता है, उसके उतना ही सुख है। परिग्रह छोड़ने का यही मतलब है कि निराकुलता हो।

इन्द्रियजन्य ज्ञान दुःख का कारण क्यों है? पर से होता इसलिये। वह समल है, अवग्रहादिकर सहित है, इस वास्ते आकुलित है।

प्रत्यक्ष ज्ञान जो है सो पूर्ण विकसित होने के कारण अपने आप है, आत्मा के आधीन है, आत्म-प्रदेशों में है; अशेष आवरण को दूर करके प्रकट हुआ है, समस्त ज्ञेयाकारों को जानता है, अतः इच्छा के अभाव स्वरूप, क्रमकर रहित है इसलिए पारमार्थिक प्रत्यक्ष सुखरूप है।

कहते हैं कि खेद का कारण घातिया कर्म हैं। परिणमन मात्र खेद का कारण नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घातिया कर्मों में भी मोह कर्म वलवान है। मदिरा की तरह इस जीव को पागल कर दुखी कर देता है।

घातिया कर्म के अभाव से जो ज्ञान हुआ सो मोह के अभाव में खेद कौन करे ?

जैसे भीत पर लिखे चित्र एक काल में अनेक दीखते हैं, वैसे केवलज्ञान में एक साथ सम्पूर्ण पदार्थ जाने जाते हैं। ऐसा आत्मा से अव्यतिरिक्त केवल ज्ञान केवल सुख का कारण है।

लौकिक में भी देखो! जिसका ज्ञान हो जाय उसका सुख होता।

सुख क्या है ?

स्वभाव का घात करनेवाली चीज का अभाव हो जाना ही सुख है।

सुख का प्रतिपक्षी दुःख है, ज्ञान का प्रतिपक्षी अज्ञान और उसका कारण मोह है। सो जब मोह का अभाव होगया तब पूर्ण सुख प्राप्त हो जाता। ऐसा पारमार्थिक सुख केवली को होता है।

उसका लेशमात्र अपने को भी होता जिससे पूरे का अनुमान होता है।

फिर पूछते हैं कि इन्द्रियजन्य सुख कैसा है ? देखलो! इन्द्रिय सुख स्वाधीन नहीं। रागी जीव जब इन्द्रिय-विषय से पीड़ित होते हैं तब उसमें पड़ते हैं। सो वह मृगतृष्णा से मृग के समान दुखी होता है।

मोही जीवों की ही विषयों में प्रवृत्ति होती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गढ़ाकोटा (सागर) के एक हवलदार का वेश्या से प्रेम हो गया। सब धन लुटा दिया, बीमार होगया सो शहर के बाहिर पड़ा रहे।

एक दिन घूमने के समय हमसे मिला और सब हाल सुनाया। बोला-इस दुर्दशा में भी मुझसे उसका प्रेम नहीं छोड़ा जाता। जब उसके बाहिर निकलने का समय होता है, तब मैं उसके दरवाजे पर खड़ा हो जाता हूँ। वह पान को पीक मेरे ऊपर थूकती है और कहती है 'मूऐ, अपने घर चला जा' किन्तु मुझे तो यह सुख है कि वह मेरी तरफ देख तो लेती है।

मोहियों—विषयासक्तों की दशा वे ही जानें, हम क्या कह सकते हैं ?

जिनको विषयों में प्रेम है उनके स्वभाव से दुःख है। यदि स्वाभाविक दुःख न होता तो विषयों में प्रवृत्ति न होती।

उन्हें कोई उपाधि से दुःख आगया हो, यह भी नहीं, स्वभाव से होता।

जैसे—हाथी, हथिनी को स्पर्श करने के कारण गड्ढे में पड़ता, मछली वंशी में लगे मांस के लोभ से मारी जाती, कमल पर बैंठा भ्रमर घ्राण के विषय से, पतिंगा जैसे प्रकाश के विषय से, और हरिण शब्द श्रवण के विषय से पकड़ा जाता है।

यदि विषय सेवन की वाँछा का दुःख न हो तो इन्हें कौन सेवे ? इस वास्ते कहते हैं कि मुक्त जो जीव हैं उनके शरीर के विना ही सुख होता है।

शरीर से सुख नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियजन्य सुख (सुखाभास) भी शरीर से नहीं होता, वह भी आत्मा से होता है। भ्रम से ऐसा लगता है कि शरीर से सुख हुआ। इसलिये—इन्द्रिय सुख चाहनेवालों को भी आत्मा की रक्षा करने की जरूरत है।

चाहे लौकी को चाकू पर पटक दो और चाहे चाकू को लौकी पर, पर वह कटेगी चाकू से। इसी तरह कैसा भी सुख हो, आत्मा से ही होगा; शरीर आदि तो साधन मात्र हैं।

कोई ऐसा एकांत पकड़ले कि आत्मा ही से सुख है, विषय कारण नहीं है (सुखाभास में) सो बात नहीं है।

परमार्थ सुख का साधन तो आत्मा ही है, शारीरिक विषय तो उसमें उल्टी बाधा पहुँचाने वाले होते हैं।

जैसे सूर्य के प्रताप, प्रकाश, उष्णता आदि एक साथ हैं उसी तरह भगवान आत्मा भी स्वयं अनंत ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुखरूप है।

इसलिये सुख और उसका मूल स्रोत आत्मा को अवश्य पहिचानना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानाराधना

आत्मा और ज्ञान में कर्ता कर्म का भेद, जैसा लोक में होता है, वैसा भेद नहीं है।

जो जानता है वह ज्ञान है। जैसे दहन क्रिया में अग्नि स्वतन्त्र है, उसी तरह ज्ञान में जो जाननरूप क्रिया है वह स्वतन्त्र है। इसीलिए (जाननरूप क्रिया होने से) उसमें ज्ञान का व्यपदेश होता।

ऐसा नहीं है जैसे देवदत्त से हँसिया पृथग्भूत हो। आत्मा (ज्ञायक) अलग चीज हो और ज्ञान अलग चीज हो, ऐसा नहीं है।

पर से भिन्न और स्व से अव्यतिरिक्त ज्ञान गुण का स्वरूप है।

अब पूछते हैं क्या दीपक अपने को प्रकाशित करने में पर की अपेक्षा करता है? नहीं।

इसी तरह पर पदार्थ का परिच्छेदन करनेवाला ज्ञान, क्या अपने को जानने में दूसरे का सहारा लेगा? नहीं। वह अपने को भी जानता और पर को भी जानता। अतीत, अनागत और वर्तमान सभी को जानता है।

यदि ज्ञान के लिये अन्य ज्ञान की आवश्यकता हो तो उसको अन्य की, उसको अन्य की, इस तरह अनवस्था हो जाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो सद्भूत और असद्भूत जितनी भी पर्यायें हैं, वे सब केवलज्ञान में झलकतीं । अतः ज्ञान की महिमा कौन कहने को समर्थ है ?

सुख कहां ?

लौकिक में भी देखो यदि एक तरफ चित्त लग जाय तो दूसरी चीज नहीं दिखाती ।

बनारस में अमरदेव झा हमको न्याय पढ़ाते थे, तो यहाँ पढ़ाते जाते और बगल में शतरंज भी खेलते जाते । शतरंज की तरफ़ देखें भी नहीं; और हमने फलानी चाल चली, फलानी चाल चली, करके खेलते जाते—इधर पढ़ाते जाते, और बाजी जीत जाते ।

कोई पूछे ज्ञान होने पर सुख पीछे होगा सो ऐसा नहीं । जैसे सूर्य के उदय होते ही तत्काल प्रकाश होता, उसी तरह ज्ञान होते ही उस सुख को पाओगे, जो वचन के अगोचर होता ।

भोजन करके तृप्ति जैसे स्वयं आजाती; उसके लिये माँ से पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती, कि मेरा पेट भरा या नहीं । इसी तरह ज्ञान चिन्मात्र चिंतामणि है जिससे सर्व अर्थ की सिद्धि होती है ।

ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो पराई चीज को अपनी कहेगा ? एक दासी थी । उसे कहीं से एक हीरा मिल गया, उसे उसकी पहिचान नहीं थी सो उससे पैर घिसने का काम ले । किसी जौहरी ने उसे देख लिया और उससे १० रुपये देकर खरीद लिया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन जौहरी का पैर उस पर पड़ गया सो वह फूट गया। तो वह कहता कि दासी, जब तुझसे पैर घिसती थी तब तो फूटा नहीं और मेरा जरा पैर पड़ जाने से फूट गया। तब वह हीरा जवाब देता है कि तुमने जान बूझकर ऐसा किया इसलिये फूट गया—

बिन जाने मो पग मले, तब न भई मो पीर ।
जान जौहरी पग धरचो, टूका भये शरीर ॥

जैनी होकर हिंसा-कर्म करते सो बड़ा अनर्थ है।

जैसे मिश्री में मीठापन है वह उसका ही है, उसी तरह आत्मा का ज्ञान स्व है और वह ही उसका स्वामी है।

जब ऐसी वस्तु स्थिति है तो यह शरीर चाहे छिद जाओ, भिद जाओ, चाहे जैसी अवस्था हो जाओ, उसमें अपनापन नहीं होने से ज्ञानी को दुःख नहीं होता।

अतः समस्त परिग्रह का अभाव करके ज्ञानी निरास्रव होता हुआ कर्म-मुक्त हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य और आनन्द

यह आत्मा ज्ञान का पुंज है। कैसा है ज्ञान ? पत्थर में टाँकी से उत्कीर्ण पदार्थ जैसे बना रहता है, ऐसा टंकोत्कीर्ण आत्मा ज्ञान प्रमाण है तथा मिथ्या भावों से दूरीभूत स्वभाव वाला है।

जब बंध की कल्पना है तब मोक्ष की भी कल्पना होती है। प्रमत्त है तो अप्रमत्त भी है, नहीं तो दोनों नहीं। अकेली चीज में क्या भेद ?

आत्मा का स्वभाव चेतना है। जब कर्त्ता नहीं तो भोक्ता भी नहीं। अज्ञान से कर्त्ता बनता है, तो भोक्ता भी अज्ञान से होता है।

अब यहां दिखाते कि आत्मा अकर्त्ता क्यों ? आत्मा अपने भावों का कर्त्ता है, पर का कर्त्ता नहीं। जिस द्रव्य से जो उत्पन्न होता वह उससे अनन्य होता। सुवर्ण की कंकण पर्याय सुवर्ण से अभिन्न है।

जीव का परिणमन जीव में और अजीव का परिणमन अजीव में है। तो जीव किसी से उत्पन्न नहीं होता ।

यह सच है कि मिट्टी से घट बना पर उसके बनानेवाले कुंभकार का निमित्त तो उसमें हैं। भगवान की वाणी सुनी सो उसको यथावत समझा तभी न कल्याण हुआ।

तात्पर्य यही है कि जितने द्रव्य हैं, वे एक दूसरे को उत्पन्न नहीं करते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव के अपने परिणामों का कर्त्ता, करण, और कर्मभाव वही है। तथा परिणति क्रिया भी उसी की है पर व्यवहार से ऐसा कहता कि, महाराज ! आपका ही प्रताप है जो बच्चा पढ़ गया। निमित्तपना उसमें इसीसे कहते, दूसरे को नहीं कहते।

इसी तरह सब द्रव्य अपना अपना परिणमन करते। यह आत्मा, जब से संसार है, तब से प्रतिनियत स्वलक्षणवाला है। जीव का स्वलक्षण चेतना है और अजीव का स्वलक्षण अचेतना है, सो उसका निश्चय नहीं होने से पर में एकत्त्व का अध्यवसान करता।

गहने की डिजाइन बिगड़ जाने से कहता कि इसने हमारा नाश कर दिया। ऐसा क्यों कहते ? पर में अपनत्त्व-बुद्धि होने से।

ये जो महिलाएँ बैठी हैं, सब अपनी शोभा सुन्दर सुन्दर कपड़ों से मानतीं। अध्यवसान ही उनका इसी चाल का है।

एक बार बाईजी और हम सहारनपुर गये। सो प्रद्युम्न-कुमार की स्त्री हर दिन अपने हीरा, जवाहरात और गहने दिखावे।

बाईजी तंग आगईं। एक दिन पास में दर्पण रख लिया, सो जब उन चीजों को देखने के लिये उसने कहा तो बाईजी दर्पण उठाकर बोलीं—इसमें अपना चेहरा तो देख !

तो क्या इन डिजाइनों से शोभा होती ? मन्दिर में जाओ तो सादगी से जाओ। उस (भगवान) को क्या दिखाते ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको तो तुम्हारा और तुम्हारे शरीर का एक-एक अणु दिखाई देता।

तो अज्ञानता से यह जीव पर में एकत्व का अध्यवसान करता। जब तक इसे न छोड़ेगा तब तक संसार है। जब तक मदिरा न छोड़ेगा तब तक पगला बना रहेगा।

और देखा जाय तो मदिरा का नशा नियत समय के बाद मिट जाता; परन्तु– और (पुनः पुनः) मदिरा पीकर पगला बनता है।

इसी तरह मोह का भी मंद उदय होता पर, नया-नया मोह भाव पैदा करके, यह संसारी प्राणी उस मोह के संस्कार को मजबूत करता रहता है।

ज़यपुर में जब मैं पढ़ता था, तब एक दिन एक लड़का हलबाई की दुकान पर ले गया और कहा कि आज तो कलाकंद खालो, फिर नहीं खाना। उस ज़गह कलाकंद अच्छा बनता था। मन में आया सो खा लिया। उसकी ऐसी आदत पड़ी कि जब तक वहां रहे तब तक हर दिन खाते रहे।

एक साल बाद जब जयपुर छूटा तव अपने आप छूट गया। वहां से जाने के बाद कुछ दिन ख्याल रहा, फिर मिट गया। इसी तरह निमित्तों के हटाने पर भी आदत छूट जाती। नहीं छोड़ो तो कहीं भी और कभी भी नहीं छूटती।

तो जब तक प्रकृति भाव नहीं छोड़ोगे तब तक संसार बना रहेगा और जब वह छोड़ दोगे तब संसार भी छूट जायेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो लड़कों में लड़ाई होगई। एक वलवान था, दूसरा कम-जोर। ताकतवर उसको मारे और दूसरा उसको गाली देता जाय। जब तक गाली देना नहीं छूटे तव तक मार खाना भी नहीं छूटे।

इसी तरह आत्मा जव तक बंध के कारणों को नहीं त्यागेगा तव तक संसारी ही रहेगा।

अतः सबका निचोड़ इतना ही है कि अपना और पर का भेदज्ञान करके आत्म-ज्ञान करो जिससे शुद्धात्मा की उपलब्धि होकर मोक्ष प्राप्त हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-दर्शन

तत्त्वज्ञान होने पर, आत्मा आप ही द्रष्टा है, आप ही ज्ञानी है, और उसीका अनुचरण करने की कामना है जिसकी, उसके अन्य द्रव्य का प्रत्याख्यान क्या होगा ?

अज्ञान करके मोहित है मति जिसकी, वह कहता है कि पुद्गल द्रव्य मेरा है। जब पर को स्व मान लिया तो अनुकूल पदार्थों में राग करता और जो प्रतिकूल हैं उनमें द्वेष करता है।

सो कहते, हे दुरात्मन् ! यह जो तेरा अविवेक है, उसे छोड़ ! अपने स्वभाव को देख ! संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को दूर कर !

सर्वज्ञ के ज्ञान में यह बात कही है कि 'जीव' नित्य उपयोगमयी है। तब तुम उसे पुद्गलरूप कैसे अनुभव करते हो ?

जीव कभी पुद्गल नहीं होता। क्यों नहीं होता ? वह कभी अपने उपयोग स्वभाव को नहीं छोड़ता। और पुद्गल कभी उपयोगवान नहीं होता।

उपयोग उपयोगवान में रहता और जड़त्व जड़ में रहता। जैसे अंधकार और प्रकाश का सहभावी विरोध है वैसे ही उपयोग और जड़त्व का परस्पर विरोध है।

इसलिये हे भाई ! प्रसन्नचित्त होओ। स्व द्रव्य को अपनी मानो। मरणाँत कष्ट हो जाय तो भी आत्म-तत्त्व को प्राप्त करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोध सच्चा वही है जो परद्रव्य को पर जानकर छोड़ देता है।

हमने आज तक पर को जाना नहीं इसलिये पर को अपना माना। जिस तरह अपने को अपना जानने से भेदज्ञान होता, उसी तरह पर को पर जानने से भी भेदज्ञान होता है।

दृष्टांत दिया—जैसे कोई पुरुष भ्रान्ति से, धोबी के यहाँ से दूसरे का कपड़ा लेकर उसे अपना जान ओढ़कर सो गया। सो जिसका वह कपड़ा था, उसने आकर उसे एकदम जगाया और कहा कि सचेत होओ—यह कपड़ा तुम्हारा नहीं, मेरा है।

तब उसने भी सब चिन्हों से परीक्षा करके यह वस्त्र मेरा नहीं, दूसरे का है—ऐसा जान उसे दे दिया और अपना वस्त्र पहिचान कर ले लिया।

इसी तरह यह आत्मा भ्रान्ति से पर से जायमान परकीय भावों को 'ये मेरे हैं' ऐसा जानकर (मोह-नींद में) सोया है, सो गुरू ने दयावंत होकर विवेक कराया, कि ये परभाव हैं, जल्दी प्रतिबोध को प्राप्त होओ। तब अखिल चिन्हों से अच्छी तरह परीक्षा करके ज्ञानी होकर सब परभावों को छोड़ता है।

तो पर के निमित्त से जायमान भावों को छोड़े, बस ! इतनी बात है।

परम पुरुषार्थ—

समय के जाननेवाले जो हैं, वे मोह को छोड़ते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावक कौन ? मोह (द्रव्य कर्म) उसकी रचना करनेवाला कौन ? पुद्गल । और मैं (आत्मा) एक टंकोत्कीर्ण, अनवरत प्रतापवाला, चेतना भावमय हूँ ।

मोह हममें होने से हमारा थोड़े ही हो गया । वह तो मोह-कर्म से होता । परन्तु है—वह दुःखदाई । दुःखदाई न होता तो कोई न छोड़ता उसे । इसका ऐसा नशा है कि बड़े-बड़े नारायण, प्रतिनारायण चक्कर में आ जाते ।

अब कोई छल करे कि मोह ने जब बड़े-बड़े नारायणों को चक्कर में डाल दिया तो हम क्या हैं ? ऐसा मानकर अपने को ठगावे तो ठगावे ।

दही और खाँड मिलने पर उसका स्वाद मिला हुआ होता तो भी दोनों का स्वाद अलग-अलग है । इसी तरह यह आत्मा अन्य द्रव्यों से सर्वथा एकत्त्व को प्राप्त नहीं है ।

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं,
चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं ।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः,
शुद्ध चिद्घन महोनिधि रस्मि ॥

सब तरफ से, स्वरस से भरा है भाव जिसका, ऐसा मैं एक हूँ । मेरे में कोई मोह नहीं है, कोई मोह नहीं है, मैं तो शुद्ध चैतन्यघन हूँ ।

कपड़े में मैल आगया तो आगया, उसे धो डालो तो साफ हो जायगा । इसी तरह आत्मा में विकार आगया तो आगया, उसे अपनाओ नहीं तो कभी न कभी दूर हो ही जायगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंतस्तत्त्व से अतिरिक्त नहीं है स्वभाव जिसका, ऐसा आत्मा ही भगवान है।

कैसा है वह ? चैतन्य ज्योतिस्वरूप है। शुद्ध है, एक है, नित्य उदित है प्रकाश जिसका, सकल कारक चक्र से अतीत, अपने एकत्त्व को प्राप्त होकर, सभी परभावों से भिन्न हुआ प्रगट शोभायमान है।

ऐसा प्रतिबोध होकर—जैसे हाथ में सोना था किन्तु स्मरण न रहने से उसे दूसरी जगह ढूँढ़ रहा था, मालूम हुआ तो वह अपने ही पास है। इसी तरह यह आत्मा अपने को भूला था, सो गुरू के द्वारा विवेक करके 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा निश्चय करता और जानता है कि 'मैं चैतन्यमात्र हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ।'

इस तरह स्वरूप का संचेतन करता हुआ अपनी आत्मा में रहे, अन्य किसी बात का विकल्प न करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभक्त-एकत्त्व

सर्वविद्या केवलज्ञान है। उसका उत्पादक है 'भेदज्ञान।' सो जब उसका उदय होता तो सर्व पदार्थ जुदे-जुदे मालूम पड़ते।

अपना देखना, जाननारूप परिणमन करना स्वसमय है। अनादिकाल से अविद्यारूप कंद से पुष्टायमान जो मोह उससे 'मैं रागी हूँ, द्वेषी हूँ' ऐसे एकत्त्व से पर को अपना जानना सो पर समय है।

सो यह दोगलापन अच्छा नहीं। लोक में यह अच्छा नहीं कहा जाता। कहा भी है—

एकत्त्व निश्चयपने को प्राप्त जो समय है, वह सुन्दर है और बंध की कथा विसंवाद का कारण है।

बंध दो में होता। उस समय दोनों अपने-अपने स्वरूप को त्याग देते। खिचड़ी बनती सो वे चीजें अपना-अपना स्वरूप त्याग देतीं। मूल स्वभाव नहीं छूटता पर उसमें विकृति आजाती।

जगत में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब अपनी-अपनी सत्ता में हैं। सो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को वा एक गुण दूसरे गुण को चुम्बन नहीं करते, स्वसमय को नहीं छोड़ते। जिनमें उत्पाद व्यय होता ऐसे सब पदार्थों को समय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो अपने एकत्त्व में जो सुन्दरता है, वह दूसरे के संग में चौपट हो जाती।

कहते हैं कि काम की, भोग की और बंध की बातें तो अनादिकाल से सुनी हैं, परिचय में आई हैं, और उनका अनुभव किया है, परन्तु एकत्त्व आत्मा का सुनना, परिचय करना और अनुभव में लाना दुर्लभ हो रहा है।

जैसे बैलों के द्वारा खेत जोता जाता उसी तरह मोहरूपी ग्रह के द्वारा आत्मा विषयों में प्रवृत्ति करता। सो उसके शमन करने के वास्ते संसारी जीव पंच-इन्द्रियों के विषयों में आचार्य-पने को प्राप्त होते।

पाप में पण्डित कौन नहीं ? सभी हैं।

विषय सिखाने की कौनसी पाठशाला है। बच्चा कुमार्ग की ओर जल्दी चला जाता लेकिन सुमार्ग पर लाने के लिये प्रयत्न करना पड़ता; क्योंकि अनादि का जो संस्कार लगा हुआ है।

तो विषय भोग की बातें अनन्तबार सुनीं, परिचय में आईं और अनुभव किया और जो आत्मा का एकत्त्व तुम्हारा है, सो कभी सुना नहीं, परिचय किया नहीं और न अनुभव किया, इसलिये वह परम दुर्लभ हो रहा है।

कुँदकुँद स्वामी कहते कि हम अपना विभव लगाकर उस एकत्त्व को दिखाएंगे।

अनुभव बड़ी चीज है। भीतर न आवे और ऊपर-ऊपर मानले तो उससे क्या लाभ ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान की पूजन करते हो तो तत्त्वज्ञानपूर्वक करो। उन्होंने जो मोक्षमार्ग बतलाया उस पर चलो तो कल्याण हो।

जब तक पुद्गल कर्म का विपाक है तब तक संसार है, और उसका विपाक नहीं तो मोक्ष है। समुद्र में जो लहरें उठतीं वे हवा से उठतीं पर हैं उसी में। इसी तरह कर्म विपाक से राग द्वेष की कल्लोलें उठतीं और उसके अभाव में नहीं। पर उनका (राग द्वेष का) व्याप्य-व्यापक भाव आत्मा से है, पुद्गल कर्म से नहीं।

जीव जब संसार अवस्था में रहता तब रागादिरूप रहता और जब सिद्धदशा में होता तब वीतरागरूप रहता। इस वास्ते संसार छोड़ने का उपदेश किया जाता।

अब आत्मा के एकत्त्व को दिखाते—

तं एयत्त विहत्तं,
दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं
चुक्किज्ज छलं ण घेतव्वस् ॥

शब्दब्रह्म की उपासना से जिसकी उत्पत्ति है, और सार-युक्ति से जो जाना जाता, तथा निर्मल विज्ञानघन परगुरू भगवान और अपरगुरू गणधर आदि की परम्परा से कहा हुआ और जिसके अन्दर आनन्द भर रहा है·········सबका प्रयास आनन्द के लिये है। उस करके मुद्रित ऐसे अनुभव से उस आत्मा के एकत्त्व को दिखाएंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे तुम अपने अनुभव से परीक्षा करके ग्रहण करना, छल ग्रहण नहीं करना। यदि ठीक हो तो मानना, नहीं तो मत मानना। मिश्री मीठी है यह स्वाद लेने से अनुभव में आयगा।

एक कवि कहता है कि·········तुम हमारे साहित्य में भरपूर दूषण देना, पर हमारे अभिप्राय को जानकर।

अतः ज्ञान की वृद्धि करो, कल्याण करो। तत्त्व-दृष्टि से न कोई मोक्ष का कारण है, और न संसार का।

यदि इनको (स्त्री, पुत्रादि को) संसार का कारण मानते, तो भगवान को मोक्ष का कारण मानो।

अधिक क्या कहें—अपनी तरफ देखो। जानने की बात थोड़ी है पर करने की वहुत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धात्म-तत्त्व

यावत् जितने पदार्थ हैं, उनकी स्याद्वाद से सिद्धि है। ये बालचंदजी हैं; कालूराम नहीं। इसमें अस्ति नास्ति दोनों आगए अपने चतुष्टय से हैं, पर के चतुष्टय से नहीं।

ऐसे स्याद्वादयुक्त शब्द-ब्रह्म से, और फिर प्रवल युक्ति से इतना ही नहीं, निर्मल विज्ञान के अन्तर्गत उपासना करनेवालों की परम्परा से—और निरन्तर आनन्द झर रहा है, ऐसे स्वानुभव में जो आया उससे आत्मा के एकत्त्व विभव को दिखाएँगे।

अब सामान्य से कहते—

वह आत्मा न प्रमत्त है, न अप्रमत्त। तो कैसी है? जैसी है वैसी ही है अर्थात् वह ज्ञायक ज्योतिस्वरूप है।

विशेष (पर्याय) से कहते—

जीव की दो तरह की अवस्थाएें हैं (१) कषाय सहित और (२) कषाय रहित।

अपने आपको जानना है तो चाहे इस तरह पर्याय से जानो और चाहे सामान्य से।

पर्याय में दो अवस्थाएें एक साथ न होगी। चाहे तो हम अपना अच्छा करलें और चाहे बुरा। दोनों हमारे हाथ हैं।

प्रश्न करते, यदि प्रमत्त अप्रमत्त का भेद नहीं तो दर्शन, ज्ञान चारित्र का भी भेद क्यों हो? तो कहते, ये भी भेद व्यवहार से है, निश्चय से नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी श्रद्धा करो, ज्ञान करो, और अपने में ही तन्मय रहो। इससे आत्मा पर जोर दिया कि अपनी तरफ दृष्टि दो।

ज्ञायक तो अशुद्ध है नहीं, जाननेवाला तो जाननेवाला ही है।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जो भेद किया, सो भी व्यवहार है वास्तव में तो वह एक अखण्ड अनंत धर्मात्मक पिण्ड है।

इस अभेद को शिष्य नहीं समझता, उसे समझाने के लिये भेद से कथन करना पड़ता।

दुनियाँ में कैसा भी बड़े से बड़ा वैज्ञानिक हो, उससे कहो कि अग्नि से उष्णता अलग करदे, तो वह नहीं कर सकता; क्योंकि उससे उसका अभेद (तादात्म्य) है। परन्तु बताने की ताकत अवश्य है। ज्ञान की महिमा इसीलिये है कि रूप, रस, गंध, स्पर्श एक जगह होने पर भी अलग अलग बता देता।

तो अनंत धर्मात्मक पदार्थ को—शिष्य प्रतिबोधनार्थ, जैसे पुद्गल का रूपादिमुखेन ज्ञान कराते, उसी तरह आत्म-ज्ञान कराने के लिये दर्शन, ज्ञान, चारित्र को दिखाते।

जैसे एक अनार्य पुरुष को किसी ने 'स्वस्ति' कहा। वह उस भाषा को नहीं जानता था, इससे टकटकी लगाकर देखने लगा कि 'ये क्या कह रहे हैं, हमसे।'

फिर जब उसको मतलब बतलाया गया कि 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहा गया है, तो आनन्द से झलझला रहे हैं आँसू जिसके ऐसा वह आनन्द मग्न होगया। यह तो हुआ दृष्टान्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी तरह 'हम आत्मा हैं' इतना कहने पर व्यवहारी जीव मेंढ़क के समान आँखें फाड़के देखता।

तब व्यवहार से कहते कि दर्शन, ज्ञान, चारित्रमय आत्मा है। जब उसे ऐसा प्रतिबोध हुआ तब उसके आनन्द का ठिकाना न रहा–सोचा, अहो! इन्होंने मेरे भले की बात कही है।

सो व्यवहार भाषा म्लेच्छ के स्थान में है, और निश्चय आर्य भाषा के स्थान में। अपने अपने स्थान में दोनों का उपयोग है।

अभी ये सब महिलाएं बैठी हैं–स्त्रीत्व से सब समान हैं, पर कोई किसी की बहिन है, और कोई किसी की माता आदि है।

एक आदमी यात्रा करके घर आया। पिता ने, उसके सिर पर हाथ फेरा और पुचकारा। उसे प्रसन्नता हुई। यह बात उसका लड़का देख रहा था, सो उसने भी ऐसा ही किया। उसे उसने थप्पड़ मारदी; क्योंकि वह व्यवहार अपने पिता की अपेक्षा ठीक था, पुत्र की अपेक्षा नहीं।

सब प्राणी दया के पात्र हैं। परन्तु मुनि आयेंगे तो नवधा भक्ति करोगे, कोई पाहुना आयेगा, तो उसका सत्कार दूसरी तरह से करोगे, और कोई सन्यासी को भोजन दोगे तो दूसरी बुद्धि से। सबमें परिणाम जुदे जुदे रहेंगे।

तो ब्राह्मण म्लेच्छ न हो जाय–जैसे यह ख्याल रखना जरूरी है, उसी तरह निश्चय व्यवहार न बन जाय, इसका भी ध्यान रखना चाहिये। व्यवहार के द्वारा पदार्थ का स्वरूप जाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता और केवल अपनी आत्मा की तरफ दृष्टि डालो तो 'सोऽहं' का कौन चिन्तवन करता ?

जो केवल अपने को ही देखता वह, पर को कैसे देखे ? ऐसी आत्मा को देखनेवाला निश्चय श्रुतकेवली है, और जो श्रुत-ज्ञान के द्वारा अपने को जानता वह व्यवहार श्रुतकेवली है।

तो मनुष्य को उचित है कि अपना कल्याण करे। आत्मा का स्वभाव कर्त्ता नहीं है, और भोक्ता भी स्वभाव नहीं है।

जैसे क्रोध आदि करते, वैसे कुछ दिन क्षमा आदि भी करके देखो। यदि मजा आवे उसमें तो स्वीकार करो अन्यथा छोड़ दो।

कोई आपकी धर्मशाला में ठहर गया........ ....सफाई ऐसी करता मानो इसी की हो, पर वह तो ऐसा नहीं मानता। इसी तरह ज्ञानी शरीर की क्रिया करते।

चश्मा लगानेवाले देखते अपने नेत्रों से ही पर चश्मे का सहारा लेते।

यदि चश्मे को ही संभालते रहो, आँख की रक्षा न करो तो कैसे देख सकोगे ?

श्रुतज्ञान के द्वारा जाननेवाला और केवल अपने द्वारा अपने को जाननेवाला जो ज्ञान है, उसका तादात्म्य कहां है ? अपने में ही।

तो व्यवहार ने भी आत्मा को बतलाया—जाननेवाला—और निश्चय ने भी।

तो अपनी तरफ दृष्टि करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक हाटिया बाजार में शाक खरीदने गया। उसने कहा, हमारी लेदो, उसने कहा, हमारी लेदो। अच्छी अच्छी सबको लेदी–बची-खुची अपने को खरीदली।

तो सबको तो लिवादी पर अपने को क्या किया? दूसरे को उपदेश देते रहो और अपना भला न करो तो क्या किया?

रात-दिन इनको (स्त्री-बच्चों को) ही पालते रहो, और अपना कल्याण न करो, यह कैसी बात है?

शास्त्र में तो केवल लिखा है, उससे ज्ञान करके अमल में लाना तुम्हारा काम है। पुस्तक के हाथ जोड़ते–इसीसे कि इसमें मोक्षमार्ग लिखा है, पर वह मोक्षमार्ग तो तुम्हारे में डूबा हुआ है, उसे ही क्यों न हाथ जोड़ो?

तो पहले अपने ऐब को निकालो। जो ऐब (दोष) को मिटा देगा वह पार हो जायेगा।

राग-द्वेष हमारी चीज नहीं, पहले यह जानो, पीछे उसे मिटाओ।

बिना जाने कैसे मिटेगा?

ठोकर लग गई तो देखकर चलो (आगे के लिये शिक्षा लो)

अपनाओ तो कोई को नहीं, और अपनाओ तो अपने को, अन्य का विकल्प छोड़ो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-विकास की ओर

उपद्रव तो यह है कि हम अपनी तरफ दृष्टिपात नहीं करते।

सम्यग्दृष्टि अपने को ज्ञायक स्वभाव मानता है। और वास्तव में देखा जाय तो हम जानने के सिवाय करते भी क्या हैं? एक परमाणु को भी अन्यरूप नहीं बना सकते।

अज्ञानी दुनियाभर की चीजों को अपनी मान लेता। ससार के पदार्थ अपने अपने आधीन परिणमन करते परन्तु वह समझता है कि मैं इन्हें परिणमा रहा हूँ। चलती हुई गाड़ी के नीचे कुत्ता समझता है कि मैं गाड़ी को चला रहा हूँ। यही मिथ्या भ्रान्ति है।

पर पदार्थ अपने आधीन न होने से सम्यग्दृष्टि इनसे तटस्थ हो जाता है। जब यह जान लिया कि हम तो एक देखने जाननेवाले हैं, अजायबघर की भाँति, तो इन्हें मत अपनाओ।

वस्तु में वस्तुत्त्व यही है कि अपने रूप को ग्रहण करा देता और पररूप का त्याग करा देता। घट घट है, पट नहीं। जीव जीव है, अजीव नहीं।·········इस तरह कर्म के सभी विभाव भावों को त्यागता हुआ विवेकी आत्मा अपने को टंकोत्कीर्ण चेतन द्रव्य स्वीकार करता है।

आत्मा ही भगवान है। अपने में जितने क्रोधादि विकार होते वह ज्ञायक स्वभाव से भिन्न हैं। विकार भाव मिट जाते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर ज्ञायक भाव नहीं मिटता। अतः जितने अस्थायी भाव हैं उन्हें छोड़कर एक स्थायी भाव का स्वाद लो। यही एक पद है जिसके सामने और सब अपद हैं।

एक बार एक ग्वालिन वृन्दावन से मथुरा को दूध बेचने गई। वहाँ एक जगह कथा हो रही थी सो खड़ी होकर सुनने लगी। कथा में उसने यह बात सुनी कि भगवान संसार समुद्र से पार कर देता है।

उसने सोची कि इससे बढ़िया बात और क्या होगी ? वह पण्डितजी से बोली, आपने हमको बहुत अच्छी बात बताई। आज आपका हमारे यहाँ निमंत्रण है सो अवश्य आइये।

इतना कहकर रास्ते में आई तो जमुना आर पार। मल्लाह से पार करने को कहा तो वह कहने लगा— अभी दो घण्टे की देर है, उतार होने दो। तब वह सोचती कि भगवान तो संसार-समुद्र से पार कर देते, यह जमुना रांड क्या बात है ? वह नदी में कूद पड़ी। पानी ने उसको रास्ता दे दिया और वह पार हो गई। घर पहुँचकर समय पर उसने पण्डितजी के लिये रसोई तैयार की।

अब पण्डितजी आए तो उस पार ही रुके रहे, जब नाव चालू हुई तब २ बजे उसके घर पहुँचे।

वह कहने लगी—पण्डितजी ! हम सब भूखे बैठे हैं, आपने आने में बड़ी देर की, २ बज गये। पण्डितजी ने नदी के पूरे वेग की बात सुनाई तो वह बोली—महाराज, आप ही तो कथा में सुनाते हो कि भगवान सच्चिदानन्द संसार-समुद्र से पार कर देते, आप जरा सी नदी भी पार न कर पाये। मैं तो आपके वचनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की श्रद्धा करके उसी नदी से पार हो आई। पण्डितजी चुप होगये।

तो कथा या शास्त्र से संसार से पार होओगे सो नहीं, उसके अनुसार चलोगे तो पार होओगे।

यह श्रद्धा की बात है। सबसे पहिले श्रद्धा कही गई है, फिर ज्ञान और चारित्र।

हममें और भगवान में इतना ही अन्तर है कि हम कर्म संयुक्त हैं और वह कर्म मुक्त। अपने ज्ञान का अंश भी उसी जाति का है, जैसा केवलज्ञान है।

आगम में ज्ञान के ५ भेद कहे, सो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, आदि उस ज्ञान की वृद्धि करनेवाले ही हैं।

सूर्य घन पटल से छिप गया लेकिन जब मेघ कुछ हटा और सूर्य प्रगट हुआ। तो वह क्या उतना प्रकाश न करेगा? अवश्य करेगा।

उसी तरह कर्म-पटल से ढ़का ज्ञान, जितना जितना आवरण के हटने से प्रगट होता, वह उसका साधक ही है, न कि बाधक। पाँच रुपये आये तो वे दरिद्रता के घातक ही समझना चाहिये।

यह हमारा अल्पज्ञान भी हमारे अखण्डज्ञान का साधक है, बाधक नहीं।

जरूरत इस बात की है कि उससे ठीक ठीक कामलें; उसका दुरुपयोग न करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शाश्वत धर्म

दो पदार्थों के मेल का नाम संसार है । समानजातीय (जीव) और असमानजातीय (पुद्गल) ये दो जुदे-जुदे पदार्थ हैं, किन्तु इन दोनों की एक पर्याय कल्पना करना ही अविद्या का मूल है ।

सो आत्मा के स्वभाव को जानने में असमर्थ दो के परिणमन को एक का परिणमन मानता इसलिए मिथ्यादृष्टि होता ।

मैं मनुष्य हूँ, काला गोरा हूँ, धनवान निर्धन हूँ इत्यादि अहंकार और ममकार से ठगाया गया, नहीं चलायमान है चेतना का विलास जिसमें, सो आत्मा के व्यवहार से च्युत होता हुआ राग-द्वेष की सृष्टि करता है ।

आचार्य कहते—हे जगत के प्राणी ! संसार है तभी से चले आये उस मोह को अब तो छोड़ो । क्या क्या दुर्गति हुई इसके प्रसाद से ? नाना प्रकार के दु:ख पाये और पा रहे हो । क्या करो तब ? आत्म रसिया को रूचनेवाले मोह को छोड़, एक शुद्धोपयोग को धारण करो ।

आपको वह प्राप्त करना है, तो पढ़ो चाहे न पढ़ो, पर राग-द्वेष-मोह को घटाओ ।

संसार को छोड़ दिगम्बर मुनि हो जाते और कदाचित् उसके बाल-बच्चे सामने दिख जाएँ तो क्या मोक्ष-मार्ग बिगड़ जायगा ?

आँख वही है तौ भी वह दृष्टि नहीं है ।

मोक्ष-मार्ग में किसी का पक्षपात नहीं भइया ! आत्म स्वभाव को जिसने प्राप्त कर लिया वही स्वयंभू है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह शुद्धोपयोग की भावना का प्रभाव है, जो सब घातिया कर्मों को अपास्त करता।

अब अपने में ही कर्त्ता कर्म को दिखाते—

इसका जो ज्ञायक भाव है वह स्वतंत्र है, इसलिये स्वयं कर्त्ता है।

अपने में ही प्राप्त किया कर्त्ता का ईप्सितम अपना स्वभाव ही है, इसलिये यही कर्म है, इसमें साधकतम यही है, इसलिये यही करण है; अपने लिये होने से संप्रदान भी स्वयं है; वह परिणति अपनेमें से ही होती, इसलिये यही अपादान है, और इसका आधार भी स्वयं आत्मा होने से अधिकरण भी यही है।

तो पर के साथ आत्मा का कारक संबंध नहीं है, इस वास्ते शुद्धोपयोग को प्राप्त करने के लिये परतंत्र होना ठीक नहीं।

संसार की परिपाटी में भी तुम्हीं हो, और मोक्ष की परिपाटी में भी तुम्हीं हो।

अतः जो लाभ (शुद्धोपयोग) हुआ, वह अनपाय है। उसमें उत्पाद व्यय न होता हो सो बात नहीं, पर वह उत्पाद व्यय विलक्षण है—ऐसा उत्पाद जिसका व्यय नहीं और जो व्यय हुआ, उसका उत्पाद नहीं।

शुद्ध स्वरूप का कभी प्रलय नहीं होता, और अशुद्ध अवस्था का उदय नहीं होता।

ऐसी आत्मा की परम विशुद्धि रूप परिणति सदा जयवंत हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय-विकल्प

अब पूछते हैं कि कर्म बद्ध हैं या अबद्ध। जीव और पुद्गल की एक बंध पर्याय है, सो जिस काल में बंध है उस समय एकमेक होने से बद्ध हैं।

और केवल (एक) की अपेक्षा विचार करो तो बद्ध नहीं है।

एकक्षेत्रावगाह होने से बद्ध हैं और अनेक द्रव्य होने से भिन्न भिन्न हैं।

कुंदकुंद स्वामी ने लिखा है—'जीव न प्रमत्त है और न अप्रमत्त।' जीव का स्वरूप कहो तो दोनों में ही कहोगे। तो ऐसा कथन करो जिससे बाधित न हो।

तो जीव बद्ध भी है और अबद्ध भी, और नयपक्ष न करो तो न बद्ध हैं और न अबद्ध।

निश्चय नय कहता अबद्ध है और व्यवहार नय कहता बद्ध है, और दोनों का अतिक्रमण करो तो न बद्ध है और न अबद्ध। क्योंकि—

जिसने यह विकल्प किया कि जीव बद्ध है, उसने अबद्ध का विकल्प या पक्ष तो छोड़ा पर एक पक्ष का विकल्प किया, और जिसने यह विकल्प किया कि अबद्ध है, उसने बद्ध का विकल्प या पक्ष छोड़ा और अबद्ध का विकल्प लिया।

जिसने बद्ध अबद्ध दोनों में से किसी विकल्प को पकड़ा उसने वस्तु के एक ही अंश को ग्रहण किया, सर्वांश को नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सब विकल्पों का त्याग करता है वह वस्तु के पूर्ण स्वरूप को अनुभवता है।

पर मोह की दशा में करे क्या ? यह सब विकल्प मोह ही कराता है।

ज्ञान ज्ञान रहे तो दुःख काहे का ? शत्रु भी ज्ञान में आ जाय और उसमें शत्रुता की कल्पना न करे तो दुःख नहीं होता।

एक बुढ़िया के पास ५ हजार रुपये थे। एक ने उसे ठगना चाहा, वह कहने लगा कि दूसरे रुपया सैंकड़े का व्याज देते हैं, हम दो रुपया सैंकड़ा देंगे, और पहिले ही दे देंगे। ये लो पहिले महिने का व्याज; बुढ़िया ने लोभ में आकर सब रुपये उसे दे दिये और व्याज के १०० रु० ले लिये। कुछ दिन बाद वह फिर आया और बोला कि वे १०० रु० और दे दो, ये लो उसका व्याज २ रुपये। बुढ़िया ने वे १०० रु० भी उसे दे दिये। बस वे २ रुपये ही उसके हाथ रहे।

अब वह धन के जाने से इतनी दुःखी होगई और यह दशा हो गई कि मंदिर में जावे सो भगवान कहीं हो और दर्शन कहीं करे।

तो भ्रम से जिसे (पुद्गल) धन मान लेते उसके लुटने से तो इतना दुःख होता, और अपना ज्ञानधन जो लुट रहा उस तरफ हम सब बेखवर हैं।

पूज्यपाद स्वामी लिखते—

यन्मया दृश्यते रूपं तन्नजानाति सर्वथा ।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते किसी से न बोलो, क्योंकि जो पिंड (पुद्गल) देखने में आरहा वह जानता नहीं और जो जानता है वह दिखता नहीं।

ऐसा कह रहे पर स्वयं बोल रहे, तो मोह में यही होता है।

नयों का पक्ष राग है। निश्चय या व्यवहार किसी का भी विकल्प राग है।

ये नाना प्रकार का इन्द्रजाल जिसमें पुष्कल विकल्प लहरियाँ उठ रहीं हैं वे कैसे मिट जातीं ? उस आत्मा की विस्फूर्ति होने से मिट जातीं।

श्रुतज्ञान अंशग्राही है और केवली विश्व के साक्षी हैं, सो सतत उल्लास को प्राप्त हुआ विमल केवलज्ञान, स्वयं विज्ञानघन श्रुतज्ञान की भूमिका को अतिक्रमण करके, केवल तटस्थ होकर पदार्थ का स्वरूप जानते।

जाननेवाला तो एक ज्ञान ही है।

यह समयसार कैसा है ? अखिल नयपक्षों से रहित है। यह कैसे होता ? पहिले श्रुतज्ञान का अवलंबन करके यह निश्चय किया कि मेरी आत्मा ज्ञानस्वभावी है।

जैसे ज्ञानोपयोग जब घट की तरफ होता, तब घटज्ञान होता और वही जब अपने सन्मुख होता तब अपने को जानता है।

इन्द्रिय-बुद्धि पर को जानती थी, और अतीन्द्रिय बुद्धि उसका निश्चय करके, कि इन सबको जाननेवाला मैं ही तो हूँ, सो उपयोग को पर की तरफ से हटाकर, नानाविध पक्ष के विकल्पों से आकुलता को छोड़, केवल अपनी तरफ देखता, तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल अपनी आत्मा रह गई देखने को, सो सब प्रकार की आकुलता जाने से, विश्व के ऊपर तैरनेवाला अखण्ड, अनन्त विज्ञानघन आत्मा को अनुभव करता हुआ केवल आत्मा को जानता।

अपना जो ज्ञान सब तरफ जानने में लगता था, वही जब अपनी तरफ लगता तब अपने को जानता है। जो बुद्धि सबको देखती वह अपने को भी देखती।

भगवान और हमारे ज्ञान में क्या फर्क है ? वह ज्यादा जानते और हम कम। परन्तु जानना तो दोनों में ही है। दीपक और सूर्य जैसे दोनों प्रकाश करते, कोई कम तो कोई ज्यादा।

जितने भी विकल्पजाल हैं, वे सब नयों के पक्ष से हैं, सो उन्हें छोड़ पूर्ण विज्ञानघन आत्मा का अनुभव करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर-स्तवन आत्म-स्तवन नहीं

अप्रतिबुद्ध प्रश्न करता है कि—शरीर जीव नहीं, यह बात समझ में नहीं आई?

यदि शरीर जीव नहीं है तो तीर्थंकर का सब स्तवन मिथ्या हो जावेगा; क्योंकि भगवान के स्तवन में ऐसा कहा जाता है—

कांत्यैव स्नपयंति ये दशदिशो धाम्ना निरून्धंति ये
धामोद्दामसहस्विनां जनमनो मुष्णंति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं
वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः॥

वे तीर्थंकर भगवान जयवंत प्रवर्तो—जो अपने शरीर की कांति से दश दिशाओं को स्नान कराते हैं, अपने प्रखर तेज से सूर्यादि के तेज को भी परास्त करते हैं। वे अपने रूप से लोक के मन को हरण करनेवाले हैं, जिनकी दिव्यध्वनि का श्रवण कर्णों को अमृत के समान सुखदायी है तथा जो एक हजार लक्षणों को धारण करते हैं।

शरीर आत्मा नहीं है तो ऐसी स्तुति क्यों करते? तो कहते हैं कि हे भाई! तूने अभी जिनशासन के नय विभाग को नहीं समझा तभी ऐसी भ्रान्ति हुई है।

प्रथम व्यवहार निश्चय को जानो।

व्यवहार नय कहता है कि जीव और देह एक है। जैसे चाँदी और सोना मिलकर व्यवहार में एक कहा जाता है, परन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा तो उपयोग स्वभाववाला है और शरीर उपयोग रहित है। इस तरह दोनों में अत्यन्त भेद है इसलिये दोनों एक नहीं हो सकते।

चाँदी का गुण पांडुरत्व है, स्वर्ण का नहीं—पीला है परन्तु मिलने से वैसा कहलाता है।

उसी तरह तीर्थंकर के स्तवन में जो यह कहा जाता है कि 'वह शुक्ल हैं, रक्त हैं' सो यह स्तवन व्यवहार मात्र समझना चाहिये। परमार्थ से यह स्तवन नहीं बन सकता।

तीर्थंकर केवली पुरुष के गुणों के स्तवन करने से ही केवली का स्तवन होता है।

इसमें व्यवहार की कौनसी बात छूट गई ? व्यवहार में मान लिया कि शरीर की स्तुति से तीर्थंकर की स्तुति होती है, केवल (निश्चय) में नहीं।

प्रश्न किया कि आत्मा तो शरीर का अधिष्ठाता है, इसलिये ऐसी स्तुति करने से आत्मा की स्तुति क्यों नहीं होगी ? तो बतलाते हैं—

क्या नगर का वर्णन करने पर राजा का वर्णन हो जायगा ?

जैसे यह नगर ऐसा है कि जिसका प्राकार आकाश को छूता है, परिखा पाताल को स्पर्श करती है. वन, उपवन पृथ्वी को निगीर्ण करते हैं इत्यादि। इस तरह नगर का वर्णन करने पर—यद्यपि राजा उस नगर का अधिष्ठाता है तथापि उसका राजा में कुछ नहीं—इससे राजा का वर्णन नहीं हो सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी तरह यह शरीर की स्तुति भी तीर्थंकर की स्तुति नहीं। चैतन्य की स्तुति होने से चैतन्य (आत्मा) की स्तुति होती है। तथैव–

नित्यमविकार सुस्थितसर्वांगमपूर्वं सहजलावण्यं।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेंद्ररूपं परं जयति ॥

जिनेंद्र भगवान की मुद्रा, हमेशा विकार रहित, सुस्थित, सर्वांग, अपूर्व और सहज सौन्दर्य से सहित—निस्तरंग समुद्र के समान निश्चल है—वह परम जयवंत हो।

इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां
नयविभजनयुक्त्यात्यंतमुच्छादितायां।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य
स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुटन्नेक एव ॥

जिन्होंने वस्तु के यथार्थ स्वरूप का परिचय कर लिया, उन्होंने नय के विभाग से आत्मा और शरीर के एकत्त्व का उच्छादन कर दिया। ऐसा होने पर वह ज्ञान यथार्थरूप में किस पुरुष के प्रगट नहीं होता? वह अपने स्वरस के वेग द्वारा खेंचे हुये एक स्वरूप होकर प्रगट होता है।

जैसे अंजन लगाने पर नेत्र का विकार दूर होकर पदार्थ ठीक-ठीक दिखने लगता है– वैसे ही स्वपर के एकत्त्व का जो अज्ञान था वह तत्त्वज्ञान से दूर होकर आत्म-स्वरूप का ठीक-ठीक अवबोध होने लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानी के भोग निर्जरा हेतु हैं

ज्ञानी का उपभोग निर्जरा का निमित्त होता; क्योंकि उन पदार्थों (चेतन व अचेतन द्रव्य) में उसके आदर भाव नहीं।

जैसे अपने यहां कोई आवे और उसे आदर न दें (बैठावें नहीं) तो वह अपने आप चला जायगा, उसी तरह ज्ञानी के कर्म और कर्मफल में राग न होने से नवीन कर्मों का आस्रव नहीं होता और पुरातन झड़ते।

उपभोग क्या है ?

जो रुच गया वही वास्तव में उपभोग है। ऐसा उपभोग (रुचिपूर्वक) ज्ञानी के नहीं होता। अब पुण्य से मिली सामग्री को कहां ले जाओगे ? सामग्री से बंध नहीं होता ! बंध तो उसकी रुचि से होता है।

पूछो तो अनन्त संसार का जो कारण था वह चला गया।

एक तो वह अग्नि जो वज्र को भी जलादे, और एक वह जो घासफूस को ही जला सके, तो ज्ञानी के मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का महान संताप दूर हो जाता।............मोह का अभाव होने से वेदनीयादि अघाति कर्म रह जाते; उन्हें कोई रस देनेवाला न होने से अपने आप खिर जाते हैं।

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं वा।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परद्रव्य को भोगने से सुख अथवा दुःख नियम से होता है। साता का उदय होगा तो सुख मिलेगा और असाता के उदय से दुःख मिलेगा। वह कर्म खिरा पर राग का सद्भाव होने से बंध पड़ जाता, और राग न हो तो वह बंध का कारण नहीं होता।

इससे बढ़कर और क्या चाहते कि कर्म उदय में आकर खिर जाये, लेकिन वह अनादि की आदत पड़ी हुई है रागादि करने की, इससे पुनः पुनः बँधता। ....तीर्थंकरादि महापुरुषों का भोग, भोग ही नहीं, इसलिए कि उनमें तल्लीनता नहीं है।

और बड़े-बड़े काम (रागादि के) कर जाते और पीछे कहते, अरे! यह तो हमने मोह से किया। विलक्षण महिमा है उनकी!

भोगों को नहीं छोड़ सकते तो उदय में आवे भोगलो पर राग न करो।

काम भी कर लिया और बँधे नहीं, तो दरअसल काम किया ही नहीं।

दूसरी तरफ मन हो तो अन्य बात ध्यान में नहीं आती।

भरत चक्री के छः खण्ड की विभूति देखकर एक देव को शंका हुई कि इतने बड़े वैभव को पा करके भरतजी घर में विरागी कैसे हो सकते हैं?

वह देव दरबार में आया और उनसे शंका का समाधान चाहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति ने देव से कहा कि देखो ! यह तैल का भरा कटोरा है, इसे हाथ में लो और चारों ओर हमारा कटक देख आओ लेकिन शर्त यह है कि इसकी एक बूंद भी नीचे न गिरने पावे।

देव कटक में घूमकर वापिस आया तो भरतजी ने पूछा–क्या देखा ? देव कहने लगा–कुछ नहीं; क्योंकि सब कटक घूमकर भी मेरी दृष्टि तो तैल के कटोरे पर थी कि इसकी एक बूंद भी न गिरना चाहिये।

भरतजी ने कहा, ठीक यही हाल मेरा है। इतना वाह्य वैभव प्राप्त होने पर भी मेरी दृष्टि तो अपने भीतरी वैभव पर रहती है।

तो दृष्टि जिस तरफ रहती उसी का ख्याल होता।

मिथ्यादृष्टि विषय को सेवन नहीं करके भी उसका भोक्ता होता और सम्यग्दृष्टि विषय सेवन करके भी अभोक्ता रहता; क्योंकि श्रद्धा में (ज्ञानी) स्वरूप को ग्रहण कर रहा है, और पर को त्याग रहा है।

तो ज्ञान में बड़ी ताकत है। बड़े से बड़ा विषय भोग भी वंध नहीं करता।

चक्रवर्ति ९६ हजार स्त्रियों के बीच रहकर भी निर्जरा करता है, इसमें आश्चर्य नहीं।

विष-वैद्य विष की ताकत को जानता है, और यह भी जानता है कि इसकी ताकत कैसे मारी जाती है, इसलिए घातक-शक्ति को खोकर वह उसे खाले तो भी मरण को प्राप्त नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी तरह ज्ञानी अमोघ ज्ञान की सामर्थ्य से राग... का अभाव होने के कारण कर्मों से नहीं बँधत...

यह कथन सामान्य से है, गुणस्थान की ... न यहाँ नहीं है।

अतः श्रद्धा को निर्मल बनाओ, लेकिन बदमाशी न करो। भोग भोगते भी जायें, और आशक्ति को घटायें नहीं; फिर कहें कि हमें बंध न होगा, सो यह बात नहीं होगी।

जैसे कोई पुरुष तीव्र अरति-भाव से मदिरा पीता है तो उसे वह पागल नहीं करता; उसी तरह ज्ञानी विषयों से अभी सर्वथा विरक्त नहीं हुआ, विषय भोग रहा है पर उदासीनता होने से—तीव्र विराग भाव की सामर्थ्य से बंध को प्राप्त नहीं होता। यह ज्ञान और वैराग्य की ताकत दिखाई।

भोजन परोसनेवाले बीसों हो, पर यश किसको मिलेगा ? (भोजन करानेवाले को)

नहीं करता हुआ भी कर्त्ता होता, और करता हुआ भी अकर्त्ता होता।

टोटा होगा तो मुनीम को या मालिक को। तो प्रकरण का स्वामी नहीं होने से प्राकरणिक नहीं होता।

योद्धा युद्धभूमि में लड़ रहे पर हार जीत किसकी कहलाती ? जो युद्ध का संचालक है, वह यद्यपि नहीं लड़ रहा तो भी हार-जीत उसी की है।

तो कर्म को सेवन करते हुए भी विषयों का स्वामी नहीं होने से नहीं बँधता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति[illegible]ने जो कुछ बात है, वह अभिप्राय की है।

है, [illegible] हाथ में ला[illegible] बँधते और परिणामों से ही छूटते। कोई [illegible]न शर्त यह है कि [illegible]ला है और न छुड़ानेवाला है।

देव [illegible] में घ[illegible]

[illegible] मा में अचिन्त्य-शक्ति है।

जिस आत्मा में यह शक्ति है कि अनंत संसार में घुमादे, उसमें यह भी तो शक्ति है कि उसका उच्छेद कर देवे।

पदार्थ के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिये। आचार्यों ने भइया ! हमारा भारी उपकार किया है। हमको हमारी चीज दिखलादी।

अब मोह-निद्रा को तोड़ ज्ञान-नेत्र खोलो। अपने घर की सम्हाल करो जिससे परमानन्द प्राप्त हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानी कर्त्ता क्यों [illegible]

ज्ञानी ज्ञानमय भाव का कर्त्ता होता, औ[illegible] भाव का कर्त्ता है।

यह विधान है कि कार्य जो होगा सो कारणमय होगा। स्वर्ण से स्वर्ण की चीज होगी और लोहे से लोहे की चीज होगी।

इसका दृष्टांत कहते कि जीव परिणमनशील है, सो अज्ञान अवस्था में अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होते और ज्ञान अवस्था में ज्ञानो के ज्ञानमय भाव होते।

अब देखिए, भोग भोगते हुए भी निर्जरा करता। कुछ तो बात भीतर होगी। माँ बच्चे से कहती (गुस्से में) कि तुम न होते तो मैं निपूती ही अच्छी थी। पर अभिप्राय कैसा है ?

इसी तरह ज्ञानी का अभिप्राय निर्मल है, परन्तु अज्ञानी का अभिप्राय ठीक नहीं होता। मिथ्यात्व से जो श्रद्धान होता वह अज्ञानमय परिणाम ही है।

कषाय के उदय से जीव के परिणाम विकृत होते।

अब कहो निमित्त न हो उसमें, तो कैसे हो ?

जीव के निमित्त को पाकर पुद्गल कर्मरूप परिणमते, और पुद्गल का निमित्त पाकर जीव अज्ञानरूप परिणमते।

कर्म, पुद्गल का परिणाम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति ने ...काल है, वहाँ विकार है। इधर तो कर्म का हाथ में ला... ...गादि का। इतनी सी बात है। निमित्त-...शर्त यह है दि... ...ी है।

...व को नैयायिक भी मानते भइया! यह देव कृत... में ...ा चित्र विचित्र है, सो बिना कारण के नहीं हो सकता।

अब इसका कारण कोई ईश्वर को मानते, और कोई कर्म आदि को।

तो हंस उड़ जाता, मिट्टी पड़ी रह जाती इत्यादि रूप से आत्मा को आबाल-गोपाल सभी मानते। सोचने समझनेवाला आत्मा ही है, शरीर नहीं-यह भी सभी मानते। अतः आत्मा का चेतना गुण मिटाया नहीं जा सकता।

सो इसका संसार कैसे होगया ?

तो मालूम पड़ता है कि चेतना है लक्षण जिसका ऐसी आत्मा में विकृति होगई। वह विकृति स्वभाव से हुई या कारण-कलाप से।

स्वभाव से तो मानी नहीं जा सकती; क्योंकि सिद्ध भगवान में भी उसका प्रसंग आयेगा। इससे सिद्ध है कि उसका कोई कारण होना चाहिये और वह कर्म के सिवा दूसरा नहीं।

किसी ने ठीक ही कहा है—

आत्मा परमात्मा में,
कर्म ही का भेद है।
काट दे गर कर्म,
तो फिर भेद है, न खेद है॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो जो संसार में पटकनेवाले हैं, उन्हें छोड़ो

कुशील के साथ राग करोगे तो तुम[illegible] और
रहेगी। देखना जानना—जो तुम्हारी स्व[illegible]
रहेगी

जो जितना स्वाधीन रहेगा, वह उतना सुखी रहेगा, पर
जो जितना पराधीन होगा वह उतना दुखी होगा।

भगवान कहते हैं कि स्वतंत्र होना चाहते हो तो हमसे भी राग छोड़ो।

यदि नहीं छोड़ोगे तो जैसे चंदन की अग्नि दाह पैदा करती, इसी तरह हमारा भी राग स्वर्ग के क्लेश को देगा।

तो बात यह आई कि राग मात्र हेय है। जैसे बने वैसे राग को मिटाने की कौशिश करे। ऐसा होने पर जो ज्ञान होगा, वह मोक्ष का ही कारण होगा।

अतः सकल जात्यन्तर से भिन्न आत्मा को जो जाने वही सकल नय पक्ष से असंकीर्ण केवली है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति ने ... काल
हाथ में ला...
शर्त यह है कि

...र मुक्ति की व्यवस्था

...कारण है और अज्ञान बंध का कारण है।

अज्ञानी के व्रत, तपादि हों तो भी अपना खयाल नहीं होने से बंध करता, और ज्ञानी के व्रत, तप, शीलादि वाह्य में न हों तो भी बंध नहीं करता।

इसका मतलब यह नहीं कि शुभ कर्म न करो, कार्य तो क्रम क्रम से होगा।

कोई पुण्य को छोड़े तो उचित है कि वह पाप को भी छोड़े।

कोई कहता इसको हम नहीं मानते, कि कर्म का त्याग करदे और कर्म करे।

अभिप्राय से कर्म नहीं करता। इसलिये ज्ञानी क्या करता है, और क्या नहीं करता; इसे अज्ञानी क्या जाने ?

पहले कह आये कि अज्ञान ही बंध का कारण है। यदि अज्ञान का अभाव हो जाय तो कर्मों का अभाव होने पर मोक्ष होता।

सम्पूर्ण कर्म-पक्ष को क्षय करना चाहते हो तो ज्ञान गुण को ग्रहण करो। वह स्वभावरूप परमार्थभूत ज्ञान मोक्ष का कारण है।

अज्ञानी केवल जाननमात्र रहकर, कुछ भी इष्टानिष्ट कल्पना न हो, ऐसे सामायिक की प्रतिज्ञा करके भी-दुरन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मचक्र के उत्तरण में असमर्थ होने से, स्वभाव ... करके शुभ परिणाम के क्लेश को प्राप्त हो...

उसके इतना है कि अशुभकर्म का ... जाता। सो कर्म के लाघव में संतुष्ट हो... होने से, स्वयं अज्ञान से बंध हेतु का कारण नहीं जा... बंध करता है।

जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमोणाणं।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥

जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है, उनका ज्ञान होना सो सम्यग्ज्ञान है, और रागादि का परिहार होना सो सम्यग्चारित्र है।

सम्यग्दर्शन तो अनिर्वचनीय है। उसके होने पर नियम से जीवादि पदार्थों का ठीक-ठीक श्रद्धान हो जाता।

सम्यग्ज्ञान स्वपर को जाननेवाला, निश्चयरूप, बाधा और संशयादि दोषों से रहित होता।

व्रत पालने में जो प्रवृत्ति अंश है, वह मल है।

पूर्ण चारित्र जब तक नहीं हुआ तब तक सराग चारित्र से मनुष्य और देव के विभवरूप क्लेश को प्राप्त होओ।

तो सराग चारित्र को हेय कहा ऊपर के चारित्र की अपेक्षा से।

ज्ञान ज्ञानरूप हो जाय तो वह मोक्ष का हेतु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति ने ... परिणमन ज्ञान का परिणमन नहीं है, वह ... हाथ में ला ... परिणमन है।

... शर्त यह है कि ... नहीं करेगा तो चारित्र नहीं होगा।

... अत आदि सर्वथा चारित्र नहीं हों सो बात नहीं।

जितने अंश में कषाय के अंश निकल जाते, उतने अंश में चारित्र प्रकट हो जाता।.........ज्ञान तो ज्ञान है, पर डाँक से लगे स्फटिक की तरह अज्ञान से और का और जानता।

अज्ञान का मतलब यहाँ ज्ञानावरणी कर्म के उदय से नहीं है; किन्तु परभावभूत जो कषायमल है, उससे अवच्छिन्न होने वाले मलिनज्ञान से यहाँ मतलब है।

'आप्त-मीमांसा' में लिखा–

अज्ञानान्मोहिनो बंधो न ज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥

मोहविशिष्ट जीव के अज्ञान से बंध होता है, वीत गया है मोह जिसके ऐसे मोह रहित जीव के ज्ञान से बंध नहीं होता।

इसलिये (ज्ञान को स्वच्छ रखने के लिये) मोह को घटाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

और क्या उपदेश दिया जाय ?

राग अच्छी चीज नहीं; पर अनादि की आदतें पड़ी हैं। तब क्या करे–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयों को विष की तरह छोड़े, और क्ष[illegible] पीयूष की तरह पीवे ।

एक गड़रिया था, वह अपनी बकरिय[illegible] और ले जाता था। एक दिन बकरा बकरी लेकर [illegible] पानी की वर्षा हो आई। सो वह गड़रिया अपना कम्ब[illegible] कर बकरियों को मुश्किल से घर लाया ।

एक बूढ़ा वकरा वृक्ष की आड़ में वहीं रह गया। कोई चारा न देख वह भूखा-प्यासा एक शेर की गुफा में जा घुसा।

थोड़ी देर बाद शेर आगया, उसने देखा कि आज मेरे स्थान में यह कौन आगया ? सोचा कोई मुझसे बड़ा ही होगा। उसने बाहिर ही खड़े होकर पूछा—कौन हो भाई मेरे घर में ?

मृत्यु को निकट जानकर बकरे ने बुद्धि से काम लिया। थोड़ी देर बाद बोला—पास आओ तब वताऊँ, मैं कौन हूँ ?

शेर ने कड़क आवाज सुनकर सोचा—अरे ! यह तो कोई मुझसे भी अधिक बलवान मालूम होता है। पास गया तो निश्चय ही खा जावेगा। अपनी जान वचाकर भागा।

इतने में ही सामने गीदड़ मिल गया। गीदड़ घबड़ा गया। फौरन मायाचारी से बोला—महाराज ! अपराध क्षमा हो। मेरा ही एक बंधु मुझे परेशान कर रहा है। आप मालिक हो, शीघ्र बचाओ।

शेर वोला—अभी ठहर ! मैं स्वयं दुखी हूँ। मेरे घर में मुझसे भी अधिक एक वलवान आगया है जिसके डर से मैं भाग आया हूँ। तेरा दुःख कैसे दूर करूँ ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति ने [illegible] —महाराज ! आपसे बढ़कर और कौन बलवान [illegible] हाथ में ला [illegible] लिये, मैं देखता हूँ वह कौन है ?

[illegible] शर्त यह है कि [illegible] तू पूँछ बाँधले और चल। गीदड़ और देने [illegible] और गुफा पर आये।

बकरा ने देखा कि गीदड़ मक्कार आगया। मेरा भेद खोल देगा। युक्ति से काम लो।

गीदड़ ने पूछा—तुम कौन हो जो हमारे राजा के घर में आ जमे हो ? कई बार पूछने पर बकरा बोला—जा ! जा !! तेरा बाप नौ शेर ले गया था, अब तू एक शेर लाकर व्याज चुकाने आया है। जा, पहले ९ शेर और ला।

शेर डरकर भागा, हाय ! यह गीदड़ मक्कार मुझे व्याज में देने आया।

गीदड़ घिसटता हुआ मारा गया और बकरा अपने स्थान पर चला गया।

तो हम अपनी शक्ति को सँभाले तो बेड़ा पार हो जाय।

अपनी चीज अपने पास है, ज्ञान का साधन हमारे पास है पर उससे लाभ नहीं लेते।

अपनी भूल से हम बँधे, उस भूल को मिटादें तो मुक्ति के लिये कहीं जाने की जरूरत नहीं है।

परस्पर की बात है। सम्यक्त्व मोक्ष का हेतु है, उसका प्रतिबंधक मिथ्यात्त्व कर्म संसार का हेतु है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्य श्रद्धा की महत्ता

निमित्त कारण कुछ नहीं करता, इ[illegible] और इसका मतलब यही कि, निमित्त उस रूप न[illegible] उसके विना उपादान की पर्याय नहीं होती। यह एक प[illegible]।

दूसरा यह कि, उपादान में योग्यता न हो और निमित्त चाहे हजार मिलें पर कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

बालू का ढ़ेर लगादो, तो क्या घड़ा बन जायगा ? चाहे कितना ही कुशल कुँभकार क्यों न हो ?

अंगुली टेढ़ी है, तो जब वह टेढ़ी पर्याय मिटेगी तभी सीधी अँगुली की पर्याय प्रगट होगी। आपको सम्यग्दर्शन होना है तो मिथ्यादर्शन के अभाव में होगा। तो कहाँ से सिलसिला चलाया गया ? देव, गुरू, शास्त्र की श्रद्धा से। सो उस समय भी आप हैं और इस समय भी आप हैं। दोनों पर्यायें आपकी हैं।

हम संसारी कब तक हैं ? जब तक यह मान्यता है कि 'शरीर हम हैं और हमारा शरीर है।' ....

विपरीत श्रद्धा करते जब भी तुम्हीं हो, और सच्ची श्रद्धा करते तब भी तुम्हीं हो।

तो रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि परद्रव्य के जितने भाव हैं, ज्ञानी उनमें इच्छा नहीं करता; क्योंकि वे उपादेय नहीं है।

इसलिये वमन कर दिया है अज्ञान जिसने—सो ज्ञान मात्र का अवलम्बन करता हुआ ज्ञानी ज्ञान का अनुभव करता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[illegible] कि सम्यग्दृष्टि के समान मिथ्यादृष्टि के भी चक्रवर्ति [illegible] तब वह भी अपरिग्रही क्यों नहीं ?
[illegible] हाथ में ला [illegible]

[illegible] शर्त यह है कि [illegible] कि पहले बाँधे हुये जो कर्म हैं, उनका देव [illegible] र उपभोग उसके होता है तो होओ, पर राग [illegible] भाव में परिग्रह भाव को प्राप्त नहीं होता ।

एक गाँव में दो आदमी थे, एक चित्रकार और दूसरा अचित्रकार। अचित्रकार चित्र बनाना तो नहीं जानता था पर था प्रतिभाशाली।

चित्रकार बोला कि मेरे समान कोई चित्र नहीं बना सकता; दूसरे को उसकी गर्वोक्ति सहन नहीं हुई। उसने झट से कह दिया कि मैं तुझसे अच्छा चित्र बना सकता हूँ, विवाद चल पड़ा। अपना-अपना कौशल दिखाने के लिये दोनों तुल पड़े। तय हुआ कि दोनों चित्र बनावें फिर अन्य परीक्षकों से परीक्षा कराई जाय। एक कमरे की आमने-सामने की दीवालों पर दोनों चित्र बनाने को तैयार हुये। कोई किसी का चित्र न देख सके इसलिये बीच में एक पर्दा डाल दिया गया।

चित्रकार ने कहा कि मैं १५ दिन में चित्र तैयार कर लूँगा। इतने ही समय में तुझे भी करना होगा। उसने कहा कि मैं पौने पन्द्रह दिन में तैयार कर दूँगा, घबड़ाते क्यों हो। चित्रकार चित्र बनाने में लग गया और दूसरा दीवाल साफ करने में। उसने पन्द्रह दिन में दीवाल इतनी साफ करदी कि काँच के समान स्वच्छ होगई। पन्द्रह दिन बाद लोगों के सामने बीच का पर्दा हटाया गया। चित्रकार का पूरा चित्र उस स्वच्छ दीवाल में इस तरह प्रतिविम्बित होगया कि उसे स्वयं अपने मुँह से यह कहना पड़ा कि तेरा चित्र अच्छा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या उसने चित्र बनाया था ? नहीं, के[illegible] स्वच्छ की थी पर उसका चित्र बन गया [illegible] अपेक्षा अच्छा रहा।

तो बस ! लग जाय, आत्मा को शुद्ध कर[illegible] जिसने भूमि को शुद्ध कर लिया उसने सब कुछ कर लिय। [illegible]।

जिन कुँदकुँद आचार्य का यह 'समयसार' ग्रन्थ है, उनके ही द्वारा बनाये 'पञ्चास्तिकाय' और 'प्रवचनसार' को मिलाकर नाटकत्रय कहलाते। इस समयसार ग्रन्थ में केवल आत्मा की मुख्यता से वर्णन है।

'पञ्चास्तिकाय' में ज्ञान की मुख्यता से और 'प्रवचनसार' में चारित्र की मुख्यता से।

चारित्र दो तरह का है—

(१) स्वरूपाचरण और (२) चारित्राचरण।

अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र तो है, दूसरा नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

...र की निस्सारता

...हीं है। न भाग्य किसी का साथी होता है। ... सुबह राज्याभिषेक होना था, क्या मालूम था कि उसे वह जंगल को जाना पड़ेगा।

किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति।
प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती
सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी॥

जिन कार्यों की संभावना भी नहीं वह आकर हो जाते हैं और जो होनेवाले हैं वह क्षणमात्र में विलीन हो जाते हैं। कर्मों की गति विचित्र है।

एकको लड़की की शादी हुई। सो भाँवर के समय लड़की सो गई। उसकी माता ने आकर उसे जगाया। जागकर उसने अपनी माता से कहा कि मैंने स्वप्न में देखा है कि मैं विधवा हो गई हूँ। माता ने उत्तर दिया कि इस अवसर पर ऐसे अशुभ विचार नहीं करना चाहिये। भाँवर को जब लड़का आया तब उस समय उसका सिरदर्द करने लगा, परन्तु समय चूक रहा था इसलिये लोगों ने उसकी भाँवर पड़वा दी। सुबह उसका देहान्त हो गया। क्या होना था, क्या हो गया। जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं उसी प्रकार कर्म के उदय से हमारी पर्यायें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बदलती रहती हैं। इन पर्यायों को हमें अपना [illegible] चाहिये।

आयु को कोई रोकनेवाला नहीं, ज[illegible] और जाती है फिर उसे बचाने में कोई समर्थ नहीं, [illegible] तो कर सकते हैं कि आयु ही न मिले। [illegible] न।

यौवन और धन स्वप्न के सदृश हैं। जब नींद खुले तब ही सारा मजा किरकिरा हो जाता है। इसी प्रकार जब तक शुभ कर्म का उदय है तब तक यह सुख है। नहीं तो एक क्षण में विलय जाता है।

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सब पदार्थ स्थिर हैं, और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सब पदार्थ अस्थिर हैं। इसलिये पर्याय में जो चीज प्राप्त हुई है उसका अभिमान करना व्यर्थ है।

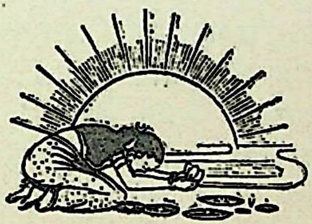

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्रवर्ति ने
हाथ में ला
शर्त यह है कि

...न की विचित्रता

देव ... वेश्या ने आजन्म व्यभिचार से पैसा उपार्जन किया, ... में उसे दान की सूझी। उसने विचारा कि मैंने जन्मभर पाप किए, अब अन्त में कुछ दान पुण्य अवश्य करना चाहिये। ऐसा विचार कर उसने प्रयाग के लिए प्रयाण किया। कुम्भ का मेला था, लाखों यात्रीगण स्नान के लिए जा रहे थे; उस वेश्या को देखकर एक भाँड ने विचार किया कि देखो 'हजारों चूहे खाकर बिल्ली हज्ज को जा रही है' मैं भी आज इसे अपना प्रभाव दिखाकर मोहित करूँगा? ऐसा विचारकर वह भाँड साधु का वेष बना एक घाट पर निश्चल आसन से आँख मूँदकर ईश्वर का भजन करने लगा। उसने ऐसी मुद्रा धारण की कि देखनेवाले बिना नमस्कार किये नहीं जाते थे। कोई-कोई तो वीस मिनट तक साधु महाराज की स्तुति कर अपने आपको कृतकृत्य समझते थे और जब वहाँ से जाते थे तब साधु महाराज की प्रशंसा करते हुए अपने को धन्य समझते थे। महाराज के सामने पुष्पों का ढेर लग गया, सेरों मिठाई के दोने चढ़ गए। इतने में वह वेश्या वहाँ पहुँची और महाराज की मुद्रा देखकर मोहित होगई। धन्य मेरे भाग्य कि इस काल में भी ऐसे महात्मा के दर्शन मिल गये, कैसी सुन्दर मुद्रा है? मानों शाँति के अवतार ही हैं महाराज.........इत्यादि शब्दों द्वारा महाराज की प्रशंसा करने लगी। महाराज ने वेश्या को देखकर एकदम साँस रोकली और पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल हो गए।

वेश्या घूमघाम कर फिर आई और महाराज को निश्चल देखकर दस मिनट खड़ी रही, अनन्तर मन ही मन विचारने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगी कि यदि महाराज मेरे यहाँ भोजन करलें तो [illegible] के पाप से मुक्त हो जाऊँगी परन्तु कोई पट[illegible] तर्क-वितर्क करती हुई सामने खड़ी र[illegible] और प्रकार निश्चल वने रहे। अन्त में वेश्या [illegible] धन्य है आपकी तपस्या को और धन्य है आपक[illegible] अब भी इस कलिकाल में आप जैसे नर-रत्नों से इस वसु[illegible] की महिमा है, मैं बारम्बार नमस्कार करती हूँ।' मैं वह हूँ जिसने सैकड़ों घरों के लड़कों को कुमार्ग में लगा दिया और सैकड़ों को दरिद्र बना दिया। अब आपके सामने उन पापों की निन्दा करती हूँ। यदि आपकी समाधि खुलती और आप मेरा निमन्त्रण अंगीकार करते तो मेरा भी कल्याण हो जाता।.........इतना कहकर वेश्या चली गई। महाराज के मन में पानी आगया—उन्होंने मन ही मन कहा—अच्छा बनाव बना।

आध घन्टे बाद वेश्या फिर आगई और पहले ही के समान नमस्कारादि करने लगी। उसकी भक्ति देखकर महाराज अपनी समाधि को अब अधिक देर तक कायम न रख सके। समाधि को तोड़कर आशीर्वाद देते हैं—'तुम्हारा कल्याण हो' साथ ही हाथ ऊपर उठाकर कहने लगे कि 'हम अपने दिव्यज्ञान से तुम्हारे हृदय की बात जान गये— तू अमुक गाँव की रहनेवाली वेश्या है, तूने युवावस्था में बहुत पाप किये पर अब वृद्धावस्था में धर्म के विचार हो गए हैं; तू यहाँ किसी साधु को खीर-खाँड का भोजन कराने आई है, तेरा विश्वास है कि साधु को भोजन देने से मेरे पाप छूट जावेंगे और मेरी परलोक में सद्गति होगी। यहाँ पर कुम्भ का मेला है, हजारों साधु ब्राह्मण आये हैं; तू यद्यपि उन्हें दान दे सकती है पर तेरी यह दृष्टि हो गई है कि मेरा-सा साधु यहाँ नहीं है सो ठीक है परन्तु मैं तो कोई साधु नहीं केवल इस वेष में बैठा हूँ जिससे तुझे साधु-सा मालूम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[illegible] सामने सैकड़ों दोना मिठाई और सैकड़ों फूलों [illegible] गई हैं पर मैं कितना खा सकता हूँ ? लोक [illegible] के विचारे ही यह मिठाई चढ़ा गए। यदि [illegible] सी गरीब को देते, इन लोगों ने यह भी विचार नहीं किया कि यह साधु इन सैकड़ों मालाओं का क्या [illegible]गा ? परन्तु लोग तो भेड़ियाधसान का अनुकरण करते हैं।

व्यासजी ने ठीक ही कहा है—

'गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
बालुकापुञ्जमात्रेण गतं मे ताम्रभाजनम् ॥'

इसका यह तात्पर्य है कि एक बार एक ऋषि गंगा स्नान करने के लिए गया, चूंकि भीड़ बहुत थी, अतः विचार किया कि यदि तट पर कमण्डलु रखकर गोता लगाता हूँ और तब तक कोई कमण्डलु ले जाय तो क्या करूँगा ? ऋषि को तत्काल एक उपाय सूझा और उसके फलस्वरूप अपना कमण्डलु बालुका पुँज से ढककर गोता लगाने के लिये चले गए। दूसरे लोगों ने देखा कि महाराज बालू का ढेर लगाकर गंगा स्नान के लिए गये हैं अतः हमको यही करना चाहिये। फिर क्या था ? हजारों आदमियों ने बालू के ढ़ेर लगाकर गंगा-स्नान किये। जब साधु महाराज गंगाजी से निकले तो क्या देखते हैं कि हजारों बालू के ढ़ेर लगे हुए हैं, कहाँ कमण्डलु खोजें ? उस समय वह बड़े निर्वेद से बोले कि 'गतानुगतिको लोकः'—

अतः तू हठ छोड़ दे कि यहाँ यही एक उत्तम साधु हैं, सैकड़ों एक से एक बढ़कर साधु आये हुए हैं, तू उन्हें दान देकर अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा पूर्ण कर और पाप से मुक्त हो। हमारा आर्शी [illegible] बहुत है, मैं तो तेरा भोजन नहीं कर सकता हूँ!

साधु महाराज की उपेक्षापूर्ण बातें सुन [illegible] और भी अधिक भक्ति होगई। वह बोली—'महारा[illegible] आपको ही महात्मा समझती हूँ, आशा है मेरी कामना विफल न होगी [illegible] जब जैसे को तैसा मिलता है तभी काम बनता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

'उत्तम से उत्तम मिले, मिले नीच से नीच।
पानी से पानी मिले, मिले कीच से कीच॥'

साधु ने कहा–'ठीक, परन्तु तेरे भोजन से मेरी तपस्या भंग हो जावेगी, और मैं वेश्या का अन्न खाने से फिर तपस्या करने का पात्र भी न रहूँगा। शुद्ध होने के लिए मुझे स्वयं एक ब्राह्मण साधु को भोजन कराना पड़ेगा, जिसमें एक लाख रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। मैं किसी से याचना तो करता नहीं, यदि तुझे सावकाश हो तो जो तेरी इच्छा हो सो कर, मेरी इच्छा नहीं कि तुझे इतना व्यय कर शुद्ध होना पड़े।

उसने कहा–'महाराज! रुपया की कोई चिन्ता नहीं, पाप का पैसा है, यदि सुकृत में लग जावे तो अच्छा है।' 'अच्छा तो संकल्प पढ़ूँ?' महाराज ने दबी जवान से कहा और उसने उसी समय एक लाख रुपये के नोट उनके सामने रख दिये। महाराज ने मन ही मन संकल्प पढ़ा और कहा–'ला खीर और खाँड, भोजन कर लूँ।'

वेश्या ने बड़ी प्रसन्नता के साथ खीर और खाँड समर्पित करदी। साधु महाराज ने आनन्द से भोजन किया और कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसाद उसे भी दे दिया। वेश्या मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी कि रुपया तो हाथ का मैल है फिर हो जायगा पर पाप से शुद्ध तो हुई। अन्त में महाराज को धन्यवाद देकर ज़ब वह जाने लगी तब महाराज ने अपने असली भाँड का रूप धारण कर यह दोहा पढ़ा—

'गंगाजी के घाट पर, खाई खीर अर खाँड।
यों का धन यों ही गया, तुम वेश्या हम भाँड॥'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपरिग्रह की भावना

त्याग करते करते अन्त में आपके पास क्या बचेगा ? कुछ नहीं। जिसके पास कुछ नहीं बचा वह अकिञ्चन कहलाता है और अकिञ्चन का जो भाव है वही आकिञ्चन्य कहलाता है। परिग्रह का त्याग हो जाने पर ही पूर्ण आकिञ्चन्य-धर्म प्रकट होता है। सुख आत्मा का गुण है। भले ही वह वर्तमान में विपरीतरूप परिणमन कर रहा हो पर यह निश्चित है कि जब भी वह प्रकट होगा तब आत्मा में ही प्रकट होगा, यह ध्रुव सत्य है परन्तु मोह के कारण यह जीव परिग्रह को सुख का कारण जान उसके संचय में रात-दिन एक कर रहा है। 'परितो गृह्णाति आत्मानमिति परिग्रहः' जो आत्मा को सब ओर से पकड़ कर जकड़ कर रक्खे वह परिग्रह है। परमार्थ से विचार किया जाय तो यह परिग्रह ही इस जीव को समन्तात्-सब ओर से जकड़े हुऐ है। 'मूर्च्छा परिग्रहः' आचार्य उमास्वामी महाराज ने परिग्रह का लक्षण मूर्च्छा रक्खा है। मैं इसका स्वामी हूँ, ये मेरे स्व हैं—इस प्रकार का भाव ही मूर्च्छा है। इस मूर्च्छा के रहते हुऐ पास में कुछ भी न हो तब भी यह जीव परिग्रही कहलाता हैं और मूर्च्छा के अभाव में समवसरणरूप विभूति के रहते हुऐ भी अपरिग्रह-परिग्रहरहित कहलाता है। परिग्रह सबसे बड़ा पाप है जो दशम गुणस्थान तक इस जीव का पिण्ड नहीं छोड़ता। आज परिग्रह के कारण संसार में त्राहि त्राहि मच रही है। जहाँ देखो वहीं परिग्रह की पुकार है। जिनके पास है वे उसे अपने पास से अन्यत्र नहीं जाने देना चाहते और जिनके पास नहीं है वे उसे प्राप्त करना चाहते हैं इसीलिये संसार में संघर्ष मचा हुआ है। यदि लोगों की दृष्टि में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतनी बात आ जाय कि परिग्रह निर्वाह का साधन है। जिस प्रकार हमें भोजन, वस्त्र और निवास के लिऐ परिग्रह की आवश्यकता है उसी प्रकार दूसरे के लिऐ भी इसकी आवश्यकता है अतः हमें आवश्यकता से अधिक अपने पास नहीं रोकना चाहिये तो संसार का कल्याण हो जाय। यदि परिग्रह का कुछ भाग एक जगह अनावश्यक रूक जाता है तो दूसरी जगह उसके बिना कमी होने से संकट उत्पन्न हो जाता है। शरीर के अन्दर जब तक रक्त का संचार होता रहता है तब तक शरीर के प्रत्येक अंग अपने कार्य में दक्ष रहते हैं पर जहाँ कहीं रक्त का संचार रूक जाता है वहाँ वह अंग बेकार होजाता है और जहाँ रक्त रूक जाता है वहाँ मवाद पैदा हो जाता है। यही हाल परिग्रह का है। जहाँ यह नहीं पहुँचेगा वहाँ उसके बिना संकटापन्न स्थिति हो जायगी और जहाँ रूक जायगा वहाँ मद-मोह विभ्रम आदि दुर्गुण उत्पन्न कर देगा। इसलिये जैनागम में यह कहा गया है कि गृहस्थ अपनी आवश्यकताओं के अनुसार परिग्रह का परिमाण करे और मुनि सर्वथा ही उसका परित्याग करे।

आज के युग में मनुष्य की प्रतिष्ठा पैसे से आँकी जाने लगी है इसलिये मनुष्य न्याय से अन्याय से जैसे बनता है वैसे पैसे का संचय कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता है। प्रतिष्ठा किसे बुरी लगती है? इस परिग्रह की छीना-झपटी में मनुष्य भाई भाई का, पुत्र पिता का और पिता पुत्र तक का घात करता सुना गया है। इसके दुर्गुणों की ओर जब दृष्टि जाती है तब शरीर में रोमाञ्च उठ आते हैं। चक्रवर्ती भरत ने अपने भाई बाहुबलि के ऊपर चक्र चला दिया। किसलिये? पैसे के लिये, क्या वे यह नहीं सोच सकते थे कि आखिर यह भी तो उसी पिता की सन्तान है जिसका मैं हूँ। यह एक न वश में हुआ न सही, षट्खण्ड के समस्त मानव तो वश में आगये—आज्ञाकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो गये पर वहाँ तो भूत मोह का सवार था इसलिये संतोष कैसे हो सकता था ? वे मन्त्रियों द्वारा निर्णीत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध में पराजित होने पर भी उबल पड़े-रोष में आगये और भाई पर चक्ररत्न चलाकर शान्त हुऐ। उस समय के मंत्रियों की बुद्धिमानी देखो। वे समझते थे कि ये दोनों भाई चरमशरीरी—मोक्षगामी हैं। इनमें से एक का भी विघात होने का नहीं। यदि सेना का युद्ध होता है तो हजारों निरपराध व्यक्ति मारे जावेंगे इसलिये अपनी बलवत्ता का निर्णय ये दोनों अपने ही युद्धों से करें और युद्ध भी कैसे, जिनमें घातक शस्त्रों का नाम भी नहीं ? यह उस समय के मन्त्री थे और आज के मन्त्रियों की बात देखो। आप घर में से बाहर नहीं निकलेंगे पर निरपराध प्रजा के लाखों मानवों का विध्वंस कर देंगे। कौरव और पाण्डवों का युद्ध किंनिमित्तक था ? इसी परिग्रह निमित्तक तो था। कौरव अधिक थे इसलिये सम्पत्ति का अधिक भाग चाहते थे। पाण्डव यदि यह सोच लेते कि हम थोड़े हैं अतः हमारा काम थोड़े से ही चल सकता है। अर्द्ध भाग की हमें आवश्यकता नहीं है तो क्या महाभारत होता ? नहीं, पर उन्हें तो आधा भाग चाहिये था। कितने निरपराध सैनिकों का विनाश हुआ इस ओर दृष्टि नहीं गई। जावे कैसे ? परिग्रह का आवरण नेत्र के ऊपर ऐसी पट्टी बांध देता है कि वह पदार्थ का सही रूप देख ही नहीं पाता।

संसार में परिग्रह पाप की जड़ है। वह जहाँ जावेगा-वहीं पर अनेक उपद्रव करावेगा। करावे किन्तु जिन्हें आत्महित करना है वे इसे त्याग करें। त्याग परिग्रह का नहीं, मूर्च्छा का होना चाहिये।

कितने ही लोग ऐसा सोचते हैं कि अभी परिग्रह का अर्जन करो, पीछे दान आदि कार्यों में व्यय कर पुण्य का संचय कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेंगे परन्तु आचार्य कहते हैं कि 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' अर्थात् कीचड़ धोने की अपेक्षा दूर से ही उसका स्पर्श न करना अच्छा है। लक्ष्मी को अंगीकार कर उसका त्याग करना कहाँ की बुद्धिमानी है ? कार्तिकेय मुनि ने लिखा है कि वैसे तो सभी तीर्थङ्कर समान हैं; परन्तु वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थङ्करों में हमारी भक्ति विशेष है क्योंकि इन्होंने सम्पत्ति को अङ्गीकृत ही नहीं किया, जब कि अन्य तीर्थङ्करों ने सामान्य मनुष्यों की तरह सम्पत्ति ग्रहण कर पीछे त्याग किया। परिग्रहवालों से पूछो कि उन्हें परिग्रह से कितना सुख है ? जिसके पास कुछ नहीं है वह सुख की नींद तो सोता है पर परिग्रहवालों को यह नसीब नहीं।

एक गरीब आदमी था, महादेव जी का भक्त था। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर एक दिन महादेवजी ने कहा—बोल क्या चाहता है ? महादेवजी को सामने खड़ा देख बेचारा घबड़ा गया। बोला महाराज ! कल सवेरे माँगलूँगा। महादेवजी ने कहा अच्छा। वह आदमी सायंकाल से ही विचार करने बैठा कि महादेवजी से क्या माँगा जाय। हमारे पास रहने के लिये घर नहीं इसलिये यही माँगा जाय। फिर सोचता है जब महादेवजी मुँह मांगा वरदान देने को तैयार हैं तब घर ही क्यों माँगा जाय ? देखो ये जमीदार हैं, गाँव के समस्त लोगों पर रौब गांठते हैं इसलिये हम भी जमींदार हो जावें तो अच्छा है। यह विचार कर उसने जमीदारी माँगने का निर्णय किया। फिर सोचता है आखिर जब लगान भरने का समय आता है तब ये तहसीलदार की आरजू मिन्नत करते हैं इसलिये इनसे बड़ा तो तहसीलदार है, वही क्यों न बन जाऊँ ? इस तरह विचार कर वह तहसीलदार बनने की आकांक्षा करने लगा। कुछ देर बाद उसे जिलाधीश का स्मरण आया तो उसके सामने तहसीलदार का पद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फीका दिखने लगा। इस प्रकार एक के बाद एक इच्छाएँ बढ़ती गईं और वह निर्णय नहीं कर पाया कि क्या माँगा जाय। सारी रात्रि विचार करते करते निकल गई। सवेरा हुआ, महादेव जी ने पूछा—बोल क्या चाहता है ? वह उत्तर देता है—महाराज ! कुछ नहीं चाहिये ! क्यों ? क्यों क्या, जब पास में सम्पत्ति आई नहीं, आने की आशामात्र दिखी तब तो रात्रिभर नींद नहीं। यदि कदाचित् आ गई तो फिर नींद तो एकदम विदा हो जायगी इसलिये महाराज मैं जैसा हूँ वैसा हो अच्छा हूँ। उदाहरण है अतः इससे सार ग्रहण कीजिये। सार इतना ही है कि परिग्रह जञ्जाल का कारण है, अतः इससे निवृत्त होने का प्रयत्न करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शांति-सरोवर

कल्याण का पथ आत्मा है, वाह्य क्षेत्र आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते। वाह्य क्षेत्र तो वहिरात्मा की दृष्टि में महत्त्व रखते हैं। चिरकाल से जीवों की प्रवृत्ति वाह्य साधनों की ओर ही मुख्य रही है, फल उसका यह हुआ कि जो आज तक हम आत्म-सुख से वञ्चित रहे। दैवयोग से सत्पुरुषों का समागम मिला तो वह वृत्ति अंतर्दृष्टि की अटपटी सी बातें सुनकर विश्वास करने में संकोच करने लगी। अंतरंग से आत्म-श्रद्धा उसे जम नहीं पाती; इसी से कल्याण का पथ नहीं पा सका।

सम्यग्ज्ञानी कदापि विषय कषाय का स्वामी नहीं, क्योंकि जिसके ज्ञान चेतना की उद्भूति हो गई वह औदयिक भावों का कर्ता नहीं, ज्ञाता है। जब संसार बल्लरि छेदने केलिए सम्यग्ज्ञान की कुठार को अपने हाथ में ले लिया है तब दुख काहे का? हाँ, यह अवश्य है कि अभी उसके चलाने की सामग्री के न होने से चलाने का अवसर नहीं, सो यह कालकृत विषमता है। इस पर्याय में जो शान्ति आत्मा का लक्ष्य है उसका मिलना कठिन है। जितनी शांति मिल गई उसी में सन्तोष करो। सन्तोष से ही सुख होता है। वाह्य पदार्थों को हेय जानकर उनमें कदापि अनुराग न करो। आत्मीय वस्तु की ओर आओ, आखिर पर वस्तु तो पर ही है। पर के स्मरण से आत्मा की विभूति पूर्ण विकास से वंचित रहती है। चन्दन वृक्ष के साथ अग्नि का सम्पर्क दाहजनक ही होता है। अतः अपने को हीन कदापि मत समझो, इसका यह अर्थ न लगाना जो अपने को पर्याय से सिद्ध समझलो। पर्याय से सिद्ध तो १४वें गुणस्थान के पश्चात् मुक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने पर ही होते हैं। हाँ, द्रव्य-दृष्टि से अवश्य सिद्ध समान हो। पर्याय में जो हो सो समझो। सिद्ध के स्मरण से सिद्ध पर्याय की सिद्धि नहीं होगी, किन्तु सिद्ध पर्याय को उत्पन्न करनेवाली जो अपनी आत्म-दृष्टि है उसी से प्रयोजन सिद्ध होगा। जो कुछ पर्याय से बने सो करो किन्तु उसके कर्त्ता मत बनो।

इस संसार में अनन्त भव भ्रमण करते संज्ञी पर्याय की प्राप्ति का महत्त्व सामान्य नहीं। इसे प्राप्त कर आत्म-हित में प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता है।

बुद्धेःफलं ह्यात्महित प्रवृत्तिः

अर्थात् बुद्धि पाने का फल आत्म-हित में प्रवृत्ति करना है। अब यहाँ विचार बुद्धि से परामर्श करने की महती आवश्यकता है कि आत्म-हित क्या है ? और उसके साधक उपाय कौनसे हैं ? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जावे तो अनायास ही हमारी उसमें प्रवृत्ति हो जावे।

साधारण रूप से प्राणियों की प्रवृत्ति प्रायः दुःख निवारण के लिए ही होती है। यावत् कार्य मनुष्य करता है प्रायः इसका लक्ष्य दुःख न होना ही है। उसके उपाय चाहे विपर्यय क्यों न हो परन्तु लक्ष्य दुःख निर्वृत्ति है। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा का हित दुःख निर्वृत्ति है। अब हमें दुःख का स्वरूप जानने की परम आवश्यकता है। आत्मा में जो एक प्रकार की आकुलता उत्पन्न होती है, वह हमें अच्छी नहीं लगती चाहे वह आकुलता उत्तम कार्य की हो चाहे अनुत्तम की हो, हम उसे रखना अच्छा नहीं समझते। चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो चाहे मिथ्याज्ञानी हो, दोनों ही इसे पृथक् करना चाहते हैं। जब इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव के तीव्र कषाय का उदय होता है तब क्रोध विषयक कार्य नहीं सम्पन्न होता इसलिये व्याकुल रहता है। कार्य होते ही वह व्यग्रता नहीं रहती तब अपने को सुखी समझता है। इसी प्रकार जब हमारे मंद कषाय होती है, उस काल में हमें धर्मादि शुभोपयोग करने की इच्छा होती है। जब वह कार्य निष्पन्न हो जाता है तब जो अन्तरंग में उसे करने की इच्छा ने आकुलता उत्पन्न कर दी थी वो शान्त हो जाती है, इसी प्रकार यावत् कार्य हैं। उन सर्व में मोही जीव की यही पद्धति है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि सुख तो आकुलता की जननी जो इच्छा है, उसके अभाव में होता है, परन्तु जिन जीवों के मिथ्याज्ञान है, वे जीव उस कार्य के सम्पन्न होने से सुख मानते हैं। इस मिथ्याभाव को दूर करना ही हित का उपाय और अहित का परिहार है।

पद्मनन्दी आचार्य ने भी कहा है -

यद्यद्देव मनसि स्थितं भवेत्तदेव सहसा परित्यजेत् ।
इत्युपाधिपरिहारपूर्णता सा सदा भवति तत्पदं तदा ॥

मन में जो-जो विकल्प उत्पन्न होवें वे वे सम्पूर्ण सहसा ही परित्याग कर देवे। इस प्रकार जब सब उपाधि-परित्याग पूर्णता को प्राप्त हो जाती है उसी काल में जो निजपद है वह अनायास प्राप्त हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि मोहजन्य जो-जो विकल्प हैं वे संसार-वर्धक ही हैं। इसी आश्रय को लेकर पद्मनन्दी महाराज ने कहा है—

वाह्यशास्त्रगहने विहारिणी, या मति बहुविकल्पधारिणी ।
चित्स्वरूप कुल सद्म निर्गता, सा सती न सदृशी कुयोषिता ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो बुद्धि चैतन्यात्मक कुलग्रह से निकलकर वाह्य शास्त्र-रूपी वन में बहुत विकल्पों को धारण करती हुई विहार करती है वह सद्बुद्धि नहीं किन्तु कुलटा स्त्री के समान व्यभिचारिणी है। अर्थात् जो बुद्धि रागादि कलंक सहित पर पदार्थों को विषय करने में चतुरा भी है तो भी गणिका की तरह वह हेया है। जहाँ तक बने अन्त: शत्रु जो जीव के रागादिक हैं उन्हीं के विजय का उपाय करना चाहिये। जप, तप संयम, शीलादि जो कार्य हैं उनका इतना मात्र ही प्रयोजन है। यदि इस मुख्य लक्ष्य पर ध्यान न दिया तब उसका लोपना, चिकना न चाँदना।

जहाँ तक बने, शान्ति के साथ धीरता का भी अवलम्बन करो। इसमें महती शक्ति है, कल्याण की भूमि है। वाह्य व्रतादिकों में जब तक अभ्यन्तर भाव का समावेश न होगा, केवल कष्टप्रद होंगे। वाह्य जीव की रक्षा करने के उद्देश्य से जो दया का उपयोग करते हैं उन्होंने दया के स्वरूप को समझा ही नहीं। जहाँ पर यह प्राणी अपनी आत्मा को इस संसार में नाना आपदाओं से वेष्टित देखकर वास्तविक ज्ञानी होता है, तब उस जीव को अनेक विभावों से अपनी रक्षा करने का सतत प्रयास करना पड़ता है। प्रथम शत्रु तो इसका सबसे प्रबल और सब विभावों की रक्षा करनेवाला अनात्म विश्वास है, जिसको लोगों ने मिथ्या शब्द से व्यपदेश किया है। जब तक यह पर-श्रद्धा इस प्राणी के है, तब तक वह पर पदार्थों में इष्ट अनिष्ट की कल्पना से नहीं छूट सकता है। अत: सबसे पहले दृढ़ता के साथ आत्मबोध करना चाहिये कि 'मैं हूँ।'

जब तक अपनी सत्ता का निर्णय नहीं होगा तब तक सारे प्रयत्न असफल ही रहेंगे, अत: मुख्य लक्ष्य प्रथम आत्मप्राप्ति की ओर होना चाहिये। वाह्य व्रतों की उतनी ही आवश्यकता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिससे अभ्यन्तर की रक्षा हो। यदि अभ्यन्तर के लिए प्रयत्न नहीं किया गया तो सम्पूर्ण क्रियाकांड आडम्बर में परिणत हो जायगा। स्वाध्याय करने का फल भी वही स्वात्मोपलब्धि है। आजीविका का साधन आत्म-घातक नहीं। हाँ, अन्याय से कमाया धन अवश्य आत्म-स्थिति में बाधक है। जैसे मुनि को शरीर की स्थिति के लिए भोजनादि क्रिया बंध की कारण नहीं, वैसे ही गृहस्थी सम्बन्धी न्यायोचित क्रिया बंध का कारण नहीं। इसका यह भी तात्पर्य नहीं कि स्वच्छन्दता से प्रवृत्ति की जाय। विशेष तत्त्व तो स्वयं होता है, पर तो निमित्त मात्र है।

❋ इति ❋

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* सुख की एक झलक *

हरगिज मिलेगा न सुख तब तलक ।
जब तक पढ़ोगे न सुख की झलक ।।

इस आध्यात्मिक पुस्तक के इससे पूर्व ११ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। श्री पूज्यपाद वर्णीजी के समय-समय पर किये गये अपूर्व प्रवचनों का संकलन इन भागों में यथावत किया गया है, जिसकी तालिका निम्नलिखित है :—

भाग	चातुर्मास	कीमत
* पहला	मुरार	१)
* दूसरा	देहली	१)
* तीसरा	इटावा	१।।)
* चौथा	ललितपुर	।।)
* पांचवा	सागर	१।।)
छठा	गया	१)
सातवां	ईसरी (प्रथम)	१)
आठवां	ईसरी (द्वितीय)	१।।)
नवां	ईसरी (तृतीय)	१)
दसवां	ईसरी (चतुर्थ)	१।।)
ग्यारहवां	ईसरी (पंचम)	१।।)

ये भाग मुमुक्षु-बन्धुओं को अध्यात्म-अमृत रस की गंगा लहरी है, जिसमें प्रवेश करते ही अभूतपूर्व सुख-शाँति का अनुभव होता है। बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी को प्रत्येक समय स्वाध्याय योग्य धर्म-ग्रन्थ हैं। अवश्य मंगाइये।

जैन व जैनेतर जनता में वितरण करने के अर्थ विशेष कंसेशन की सुविधा भी है।

प्रकाशक

*ये भाग अप्राप्य हैं अतः कोई भी महानुभाव मँगाने का कष्ट न करें।

प्रकाशक

मुद्रक—अशोक प्रेस, लोहिया बाजार, लश्कर.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi